मंजरी

स्त्री के मन की

अंक–15 वर्ष 2019

डर्टी

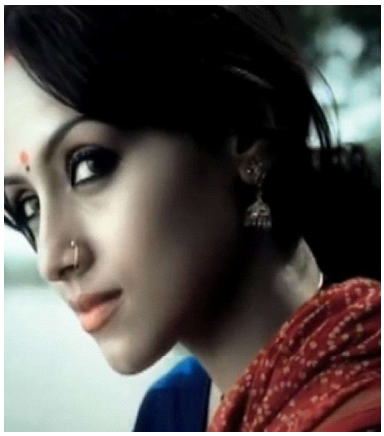

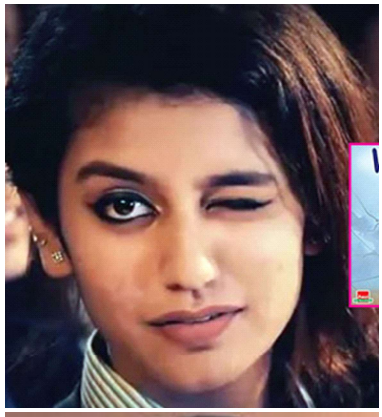

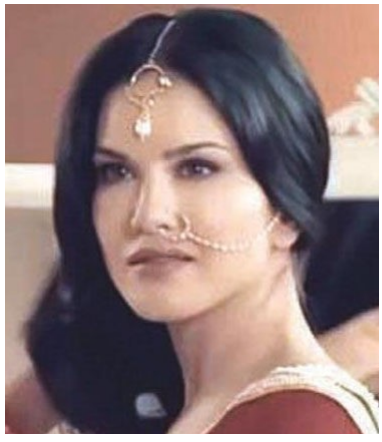

पिक्चर

मीडिया में महिलाओं का चित्रण –सही या गलत?

Sulabh Sanitation Movement

Sulabh International
Social Service Organisation

सुधा

मिल्क एवं मिल्क प्रोडक्टस

वादा शुद्धता का

लाखों परिवारों के पोषण एवं जीविकोपार्जन का आधार

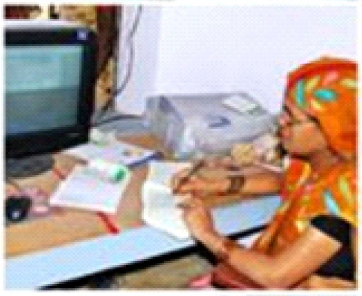

आत्म-विश्वास और
आत्म-सम्मान की
स्वस्थ पहचान
श्वेत कांति की मिसाल
एवं बिहार का गौरव

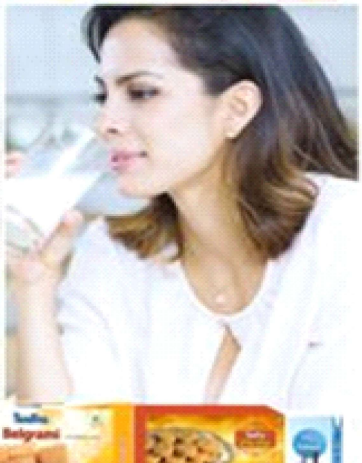

COMFED

बिहार स्टेट मिल्क को-ऑपरेटिव फेडरेशन लि.

ई-मेल: comfed.patna@gmail.com | टोल फ्री नं.: 18003456199 | www.sudha.coop

takshila
connect
to the
universe

संकल्पना

संकल्पना

इक्विटी फाउंडेशन लंबे अरसे से एक वेब पत्रिका शुरू करने के बारे में सोच रहा था। मकसद था महिला और समाज के मुद्दों को शिद्दत से उठाना। जब हमने चीजों को एक साथ कर उसे पत्रिका के रूप में सजाने के बारे में सोचना शुरू किया तो इस क्रम में कई लोगों से जुड़े। हमने महिलाओं को पत्रिका से जोड़ने की कोशिश की। हम दोस्तों से मिले और परिचितों से बात की। महिलाओं के सामाजिक समूहों और शिक्षाविदों के एक साथ जुड़ने के बाद जो स्वरूप सामने आया वह है 'मंजरी'।

मंजरी यानी कोंपल। शाखों में फूटने वाली नन्ही पत्तियां। नई शाखों का सृजन करने वाले इन कोंपल को कुम्हलाने से बचाना जरूरी है नहीं तो पूरे पेड़ का विस्तार कुंद हो जाएगा। ठीक उसी तरह स्त्री के मन की मंजरी को सहेजने की जरूरत है वरना पेड़रूपी समाज विकृति का शिकार हो जाएगा। हमारा प्रयास इसी मंजरी को पुष्पित पल्लिवत करने का है जो औरत की सोच और उसकी कोशिश को सही दिशा प्रदान कर सके।

मंजरी के सृजन के दौरान पहले तो 10–30 लोगों का एक ढीला–ढाला समूह बना। विचार आते गए। अलग–अलग विषयों और मुद्दों पर। समूह में कुछ अनमनी महिलाएं थीं तो कुछ सहानुभूति दिखाने वाले पुरुष भी। कुछ महज एक या दो बैठकों में शामिल हुए तो कुछ जब मन में आया, आ गए। बाकी बचे लोगों ने 'मंजरी' को मुकाम पर ले जाने का दायित्व अपने कंधों पर लिया। 'मंजरी' का लक्ष्य एक ऐसा मंच उपलब्ध कराना है जहां बुद्धिजीवियों को उनकी खुराक मिले तो शोधकर्ताओं की जिज्ञासा शांत हो। क्रियान्वयन के लिए बहस और तर्क के रास्ते हमेशा खुले रहें। इक्विटी की लगातार कोशिश रही है शोध और क्रियान्वयन के बीच की दूरी को पाटना। ऐसे में हमारा मानना है कि शोध तब तक अप्रासंगिक हैं जब तक कि इनका लोगों की जिंदगी और उनके क्रियाकलापों से जुड़ाव न हो। ठीक इसी तरह सिविल सोसायटी के तौर पर अगर हम जमीनी सच्चाई से वाकिफ न रहें, जिनमें सामाजिक प्रक्रियाएं और ऐतिहासिक मूल्यों का समावेश है और जो समाज में रहने वाले लोगों के मूल्यों और उनके चरित्र को आकार देते हैं, तो किसी भी कोशिश का कोई मतलब नहीं रहता है।

'मंजरी' एक उद्यम है, क्रियाशीलता को शोध आधारित रचना और आलोचना के नजरिये से देखने का जो महिला अधिकारों के साथ–साथ जीवन के हर पलू को इंगित करे। नियमित गैर सरकारी संगठनों और अकादमिक तंत्रों से इतर 'मंजरी' राजनीति और आदर्शवादिता को लांघ कर सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सुधारों को सांस्कृतिक संवे. दनशीलता के आधार पर मापती है। 'मंजरी' उन तमाम कार्यकर्ताओं, विद्वानों, शिक्षाविदों, पत्रकारों, प्रोफेशनल, गृहणियों और नीति निर्धारकों द्वारा पढ़ी जाएगी जो किसी समस्या के लिए समाधान आधारित नवीन दृष्टि और पृथक सोच रखते हैं। यह पत्रिका अपने पाठकों को जेंडर आधारित मुद्दों को जैविक और सामाजिक आधार पर परखने की छूट देती है। व्यक्ति और समाज की विचारधारा में जेंडर को लेकर क्या बदलाव आये और उनका क्या असर हुआ, इसकी पूरी पड़ताल करने की आजादी लोगों को होगी। यह पत्रिका एक कोशिश है पड़ताल की प्रवृत्ति को जगाने की ताकि लोग तेजी से बदलते और विविधताओं से भरे समाज में पूरी क्षमता से काम करने को तैयार हो सकें जिसमें महिलाओं के प्रति भेदभाव भी एक अहम मुद्दा होगा। महिला समानता और अधिकारों पर 'मंजरी' के दखल से उन बेशुमार कार्यकर्ताओं, संगठनों और विद्वजनों को फायदा होगा जो दहेज, यौन प्रताड़ना, महिला अधिकारें, महिला आरक्षण, आर्थिक सुधार और अल्पसंख्यक समुदायों के निजी कानूनों में रुचि रखते हैं।

पत्रिका का मकसद

इक्विटी फांडेशन खुद को सुविधाविहीन महिलाओं को उनकी पूर्ण क्षमता से अवगत कराने और समाज में उनके क्रियाशील प्रभुत्व को स्थापित कराने की दिशा में वाहक के तौर पर देखता है। देश के विकास के हर क्षेत्र में महिलाओं की समान भागीदारी की राष्ट्रीय नीति तभी सफल हो पाएगी जब महिलाओं की भूमिका और उनके योगदान को कमतर आंकने वाले संस्थान और विचारों को हतोत्साति किया जाये या उनका पूरी तरह सफाया किया जाय। 'मंजरी' की परिकल्पना समाज और अर्थव्यवस्था में महिलाओं के जीवन और उनके स्तर को प्रभावित करने वाले विचारों के निर्माण, विकास और उनके प्रसार के लिए की गई है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना के परिप्रेक्ष्य में समानता संबंधी मुद्दों को इस प्रकार समग्र रूप में देखने की जरूरत है जो असमानता की अंतरवर्गीय विशेषताओं को जाहिर कर सके। समानता पर आधारित 'मंजरी' के ज्यादातर आलेख भिन्न–भिन्न समूहों को निशाने पर रखते हैं जो कुछ हद तक बेद जरूरी भी है। इसलिए यह पत्रिका कुछ समूहों के कुछ विशेषाधिकारों के पूर्ण निष्कासन और अंतरवर्गीय दृष्टिकोणों के स्थापन के बीच नियंत्रक की भूमिका में होगी जो नीति निर्धारण और योजनाओं के क्रियान्वयन के दौरान असमानता को उसके तमाम स्वरूपों के साथ सामने रखने में कारगर होगी। ऐसे में इसका मकसद लैंगिक भेदभाव के निर्मूलन की ओर वह विवेचनात्मक चर्चा छेड़ने का है जो वर्तमान परिदृश्य में शोधों का एजेंडा तय कर सके और एक बेहतर वैकल्पिक प्रस्ताव का सृजन कर सके। अब तक यह संगठन कार्यशाला, कांफ्रेंस और अन्य सार्वजनिक आयोजनों के जरिये अपनी प्रतिबद्धता दर्शाता रहा है लेकिन अब इस पत्रिका के माध्यम से यह क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय अतिथि लेखकों, जिनमें विद्वजन, अधिवक्ता, सरकार, पत्रकार, फिल्म निर्माता, कवि और सामाजिक कार्यकर्ता हैं, को जोड़ने की कोशिश कर रहा है।

संपादकीय

संरक्षण

पद्मश्री डा. उषा किरण खान
प्रख्यात लेखिका एवं
साहित्यकार

मणिकांत ठाकुर
प्रख्यात पत्रकार

प्रो. भारती एस. कुमार
प्रोफेसर (सेवा.) इतिहास,
पटना विवि

डा. रेणु रंजन
प्रोफेसर (सेवा.), समाज शास्त्र
पटना विवि

प्रो. डेजी नारायण
प्रोफेसर, इतिहास, पटना विवि

परामर्श

मनीष कुमार
ब्यूरो चीफ, एन.डी.टी.वी.
बिहार

कीर्ति
नेशनल कोऑर्डिनेटर,
कैरीटास स्विट्जरलैंड (CAR-ITAS Switzerland)

डा. शरद कुमारी
सचिव, बिहार महिला समाज

अंजिता सिन्हा
पत्रकार

डा. मधुरिमा राज
लेखिका

मीडिया और खासकर विज्ञापन, फिल्मों और टेलीविजन कार्यक्रमों में जेंडर को लेकर रूढ़िवादिता का सामाजिक विश्वास और व्यक्तिगत व्यवहार एवं मनोवृत्ति पर गहरा असर होता है। जेंडर रूढ़िवादिता के नकारात्मक प्रभाव पर होने वाले अनुसंधानों की संख्या बीजिंग प्लेटफार्म फॉर एक्शन, 1995 के बाद से कई गुणा बढ़ गई है, जिसने जेंडर असमानता का मुकाबला करने और इसके समाधानों को स्थायी बनाने में मीडिया की भूमिका पर पूरे विश्व का ध्यान खींचा। हालांकि दुनिया भर में मीडिया –इलेक्ट्रॉनिक, प्रिंट और दृश्य– में महिलाओं की नकारात्मक और अपमानजनक छवि प्रदर्शित की जाती रही है।

ज्यादातर देशों के टेलीविजन कार्यक्रम और फिल्मों में औरतों के विविधतापूर्ण जीवन, उनके अनुभवों, पहचान और बदलते समाज में उनके योगदान का संतुलित चित्रण नहीं किया जाता है। इसके उलट, हिंसक, अपमानजनक कामुक मीडिया उत्पाद महिलाओं और समाज में उनके योगदान पर नकारात्मक प्रभाव भी डालते हैं। प्रोग्रामिंग जो महिलाओं की परंपरागत भूमिका को बल प्रदान करती है, लगातार बढ़ती जा रही है। पिछले दो दशकों में सूचना एवं संचार तकनीक के विस्तार ने जेंडर रूढ़िवादी कल्पना को कई गुणा बढ़ा दिया है और वर्ष 2000 के पूर्व मौजूद सांस्कृतिक सीमाओं को धुंधला कर दिया है। तकनीकी द्वारा संचालित आज के नये युग में, तमाम संस्कृतियों और राष्ट्रों में जेंडर समानता पर मीडिया के प्रभाव को लेकर शिक्षण और दृष्टिकोण को साझा करने की जरूरत कहीं अधिक है। मीडिया में जब भी घर से बाहर औरतों के जीवन को दिखाया जाता है तब उसपर बहुत कम या नहीं के बराबर ध्यान दिया जाता है। यद्यपि कि उनके पास वकील या डॉक्टर जैसे टाइटल भी होते हैं, लेकिन रूढ़िवादी रूप से उन्हें घरेलू महिला, मां या पत्नी के रूप में ही दिखाया जाता है। हम उन्हें परिवार और दोस्तों की देखभाल से जुड़ी बातचीत करते या दूसरों के लिए काम करते हुए ही पाते हैं जो कहीं से भी उनकी व्यावसायिक जिम्मेदारियों से मेल नहीं खाते हैं। इससे सुपरवुमेन की एक अवास्तविक अपेक्षा का जन्म होता है।

दूसरों को खुश रखने को ही औरतों के जीवन का लक्ष्य बनाने में पत्रिकाओं का बहुत बड़ा हाथ होता है। एक अध्ययन में यह बात सामने आई है कि पत्रिकाएं औरतों पर अच्छा दिखने और दूसरों को खुश रखने के लिए दबाव बनाती हैं। इसी प्रकार, विज्ञापन सिखाते हैं कि महिलाएं कैसे ''खुद को बेहतर'' बना सकती हैं और इसके लिए बालों को रंगने; वजन कम करने; कम उम्र की दिखने और ''उनके लिए अब भी जवान'' दिखने के लिए उकसाते हैं; और ''उनके घर आने पर उन्हें खुश रखने के लिए'' स्वादिष्ट भोजन बनाने की विधि बताते हैं। ऐसे विज्ञापन इस बात को लगातार बढ़ावा देते रहते हैं कि मर्दों को खुश रखना ही औरतों का दायित्व है और अगर वे अच्छा दिखने और दूसरों को खुश रखने में विफल रहती हैं तो उनके मर्द उन्हें छोड़ देंगे। औरतों को या तो मर्दों को आकर्षित करने वाली सजावट की चीज के तौर पर दर्शाया जाता है या फिर पुरुषों की यौन उत्कंठा की शिकार के तौर पर। दोनों ही हालातों में औरतों को केवल उनकी देह और पुरुषों द्वारा उनका उपयोग करने के तरीके के आधार पर ही परिभाषित किया जाता है। उनकी स्वतंत्र पहचान और उनके काम मीडिया में उन्हें प्रस्तुत किए जाने के तरीके के मुताबिक नहीं होते हैं और शोषण का विरोध करने की उनकी क्षमता को दबा दिया जाता है।

20 शताब्दी के आरंभ से ही, नारीवादी आंदोलनों ने महिला खिलाड़ियों की स्थिति को सुधारने के लिए बड़े प्रयास किए हैं। यद्यपि कि इन आंदोलनों से हालात बदले हैं लेकिन इसके बावजूद कई मुश्किलों का समाधान किया जाना अभी बाकी है। आज के समय की एक सबसे बड़ी समस्या मीडिया में महिला खिलाड़ियों को कामुक तरीके से प्रस्तुत करना है। पुरुष

हमारी बात

मुख्य संपादक

नीना श्रीवास्तव

संपादक

दीपिका झा

शोध

नीना श्रीवास्तव
दीपिका झा

प्रबंधन/व्यवस्था

राहुल कुमार

प्रकाशन

इक्विटी फाउंडेशन

संपर्क

इक्विटी फाउंडेशन
123 ए, पाटलीपुत्र कॉलोनी
पटना, 13
फोन : 0612-2270171

ई–मेल
equityasia@gmail.com
वेबसाइट
www.emanjari.com

© इक्विटी फाउंडेशन

खिलाड़ियों की तरह महिला खिलाड़ियों के पास खुद को प्रदर्शन के आधार पर प्रस्तुत करने की सुविधा नहीं होती है और मीडिया में खूबसूरती और सेक्स अपील के आधार पर उनका चित्रण मैदान में उनके प्रदर्शन को ढंक देता है। विज्ञापनों और पत्रिकाओं में महिला खिलाड़ियों को किसी खास अंदाज या कपड़ों में और कभी–कभी तो नग्न दिखाकर वे उन्हें ''पहले औरत और बाद में खिलाड़ी'' की तरह प्रस्तुत करते हैं जिससे अंततः इन खिलाड़ियों की मैदान पर उपलब्धियों और आत्म सम्मान को नुकसान पहुंचता है। महिला खिलाड़ियों को कामुक तरीके से प्रस्तुत कर और उनके खेल को कमतर आंक कर मीडिया दर्शकों को अलग–थलग कर महिला आंदोलनों को भी बाधित करता है।

हालांकि मीडिया ने महिला राजनीतिज्ञों के लिए उपयुक्त स्थान बनाने की कोशिश की है लेकिन फिर भी यह जेंडर और वर्ग की बाधाओं को तोड़ नहीं पाया है। ताकतवर वर्ग और परिवार से आने वाली कुछ महिला राजनीतिज्ञों ने भले ही मीडिया में अपने लिए जगह बना ली है लेकिन निम्न अथवा मध्यम वर्ग की तथा कम आकर्षित महिलाओं के लिए मीडिया के माध्यम से समाज और राजनीति में अपने लिए स्थान बना पाना अब भी टेढ़ी खीर है। मीडिया में आरक्षित सीटों से चुनाव जीतने वाली महिला सांसदों को जगह तो दे दी जाती है लेकिन उसके बाद उन्हें नाममात्र का ही प्रतिनिधित्व दिया जाता है। यही कारण है कि आम लोग अपने क्षेत्र की महिला जनप्रतिनिधियों को निर्णय लेने की प्रक्रिया में प्रभावी नहीं मान पाते हैं। इसके अलावा, परंपरागत मीडिया में नकारात्मक चित्रण के कारण भी महिलाएं राजनीति से दूर हो जाती हैं।

पत्रिकाओं के विज्ञापनों से जो संदेश सामने आता है वो यही है कि औरतें सेक्स की वस्तु हैं। मर्दों को शायद ही कभी कम कपड़ों में या नग्न दिखाया जाता है लेकिन औरतों को ऐसे ही देखना लोगों की आदत हो गई है। सौंदर्य सामग्री, कपड़ों और ऐसे ही अन्य उत्पादों के विज्ञापन में औरतों को मर्दों को रिझाते हुए दिखाया जाता है। प्राइमटाइम और फिल्मों में आकर्षक, सुंदर और खतरनाक स्तर तक पतली दिखने वाली अभिनेत्रियां इस सोच को ही बढ़ाती हैं कि मर्दों का दिल जीतने के लिए उन्हें भूखा रहकर वजन कम करना होगा चाहे इससे उनकी मौत ही क्यों न हो जाए।

जैसा कि हमने देखा कि मीडिया मर्दों को आक्रामक और औरतों को सहनशील दिखाता है, ये महत्वपूर्ण है कि क्या इससे औरतों के साथ दुर्व्यवहार और उनके खिलाफ हिंसा के मामलों में भी बढ़ोतरी हुई है। ऐसे कई प्रमाण मौजूद हैं (हंसेन और हंसेन, 1988) जिनसे सिद्ध होता है कि मीडिया में औरतों को अत्यधिक सहनशील दिखाने और यहां तक कि हिंसा को उचित ठहराए जाने से यौन हिंसा में बढ़ोतरी हुई है।

इस पूरे अंक के दौरान हमने ये दिखाने की कोशिश की है कि कैसे मीडिया लिंगों के बीच परंपरागत व्यवस्थाओं को प्रदर्शित करता है और उन्हें बढ़ावा देता है। वर्तमान अंक मीडिया में औरतों और लड़कियों के चित्रण पर एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करता है।

Nsrivastava

नीना श्रीवास्तव

थीम पेपर

मीडिया में औरतों का चित्रण

न तो स्क्रिप्ट में और न ही स्क्रीन पर महिलाओं की प्रस्तुति उचित तरीके से की जाती है। इस संवेदनशील मुद्दे पर मशहूर अदाकारा नंदिता दास का सारगर्भित आलेख

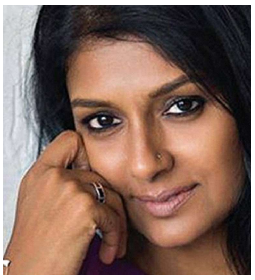

नंदिता दास

भारतीय अदाकारा और फिल्म निर्देशक जिन्होंने 40 से ज्यादा फिल्मों में अभिनय किया है। लीक से हटकर और धारा के विपरीत भूमिकाओं के लिए वे हमेशा चर्चा में रही हैं। फायर, अर्थ, बवंडर और बिफोर द रेन्स उनकी कुछ हिट फिल्मों में से हैं।

हाल ही में मैंने 'मार्गरिटा विथ ए स्ट्रा' देखी; सेरिब्रल पैल्सी से ग्रस्त एक युवा लड़की की कहानी जो खुद की खोज में निकलती है। दूसरी चीजों के अलावा एक चीज जिसने मुझे आकृष्ट किया, कि यह फिल्म बेचडेल टेस्ट को पास करने में कामयाब रही थी। एक ऐसा टेस्ट– जो दो औरतों पर आधारित फिल्म के लिए हो जिसमें दोनों के बीच संवाद का विषय पुरुष के इतर हो। पूरी दुनिया में आधी से अधिक फिल्में इस टेस्ट में विफल हो जाती हैं और भारत में लगभग सभी। जब तक मैंने 'फिराक' नहीं किया था, तब तक मैं भी इसके बारे में नहीं जानती थी, लेकिन मुझे खुशी है कि मैंने टेस्ट को पास कर लिया था!

बेचडेल टेस्ट एक बहुत ही साधारण टेस्ट है, और वास्तव में यह सिनेमा में महिलाओं की विरोधाभासी स्थिति को दर्शाने वाली ही है जो हर जगह मौजूद है लेकिन उसे कभी सुना नहीं जाता है। महिलाएं समाज का आधा हिस्सा होती हैं लेकिन बावजूद इसके स्क्रीन पर वे पुरुषों की तुलना में बहुत कम ही दिखाई देती हैं। इससे भी अधिक, उनका चित्रण अत्यधिक कामुक या दब्बू के रूप में ही किया जाता है। कहानियां लिखते समय महिलाओं को जगह न देने और स्क्रीन पर उनकी प्रस्तुति के बीच जुड़ाव स्थापित किया जाना बहुत जरूरी है। हॉलीवुड में, 2009 से 2014 के बीच महिला कहानीकारों की संख्या 17 प्रतिशत से घटकर 15 प्रतिशत हो गई है। अपने देश में यह आंकड़ा इससे कहीं अधिक खराब है। तीन साल तक बाल फिल्म सोसाइटी की अध्यक्ष रहने के दौरान मुझे ये पता चला कि बाल फिल्मों में भी औरतों की परंपरागत छवि को ही दिखाया जाता है। वे घर का काम करती हैं चाहे वो कामकाजी भी क्यों न हों, जबकि पुरुष हमेशा निर्णय लेने की स्थिति में होते हैं। लड़के साहसी होते हैं तो लड़कियां रोने वाली और हमेशा प्यारी होती हैं। ये स्थिति अकेले भारत की ही नहीं है बल्कि बच्चों की हर क्लासिक पश्चिमी कहानी में ऐसा ही है, सिन्ड्रेला, स्नो व्हाइट, स्लीपिंग ब्यूटी, इन सबकी महिला पात्रों की खासियत उनकी खूबसूरती ही है। यही कारण है कि जब कोई बच्चा इन फिल्मों को देखता है तो अवचेतन मन में यही सीखता है कि किसी लड़की के लिए खूबसूरती सबसे जरूरी चीज है।

अकादमी अवार्ड विजेता अभिनेत्री गीना डेविस की चिंता का विषय भी यही था, और इसीलिए उन्होंने एक शोध आधारित संस्था की शुरुआत की जो मीडिया और मनोरंजन उद्योग में जेंडर संतुलन बनाए रखने, उस पर लोगों को शिक्षित करने, रुढ़िवादिता को कम करने तथा महिलाओं एवं 11 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के चरित्रों में विविधता लाने के लिए जागरूकता फैलाने पर काम करती है। इस संस्था ने मुख्यधारा की बॉलीवुड फिल्मों का भी विश्लेषण किया और पाया कि विज्ञान अथवा तथ्यपरक कामों की पृष्ठभूमि वाले महिला चरित्रों की संख्या केवल 8 प्रतिशत थी। हॉलीवुड कुछ हद तक बेहतर रहा और यहां ऐसे महिला चरित्रों की संख्या 12 प्रतिशत रही, जबकि फ्रेंच फिल्मों के 40 प्रतिशत महिला चरित्र महत्वपूर्ण कार्यों में संलग्न होते हैं।

निरंतर शोधों के माध्यम से भेदभावों (हॉलीवुड में महिला निर्देशकों की संख्या मात्र 7 प्रतिशत है) पर प्रकाश डालने से महिलाएं प्रेरित हुई हैं और कंपनियां प्रतिउत्तर देने पर विवश हुई हैं। 1923 में स्थापित वॉल्ट डिजनी किसी महिला द्वारा निर्देशित पहली फिल्म 2013 में ला सकी। इससे भी अधिक, फिल्म ने पारंपरिक फार्मूला को पीछे छोड़ते हुए दो बहनों को मुख्य नायक के रूप में चित्रित किया। यह फिल्म हिट हुई और इसकी व्यावसायिक सफलता से लोगों ने ये समझा कि लैंगिक भेदभाव को मिटाने की दिशा में किये गए प्रयास का फल स्टुडियो की आम धारणा के विपरीत आकर्षक भी हो सकता है।

मशहूर अदाकारा मेरिल स्ट्रिप हॉलीवुड में महिला लेखकों और चरित्रों की संख्या में कमी

से इतनी व्याकुल हुईं कि उन्होंने 40 वर्ष से अधिक की उम्र की महिलाओं के लिए बने स्क्रीनराइटर लैब को आर्थिक सहायता देना शुरू कर दिया है! हाल ही मैंने मुंबई में एशिया सोसाइटी द्वारा आयोजित एक पैनल में हिस्सा लिया जिसमें हमने इस बात पर चर्चा की कि कैसे सांस्कृतिक विचार–विमर्श सामाजिक संरचनाओं को परिभाषित करने में मदद करता है, जैसे कि महिलाओं की भूमिका, नारीवादिता, स्त्री और पुरुष कैसे एक–दूसरे को जोड़ पाते हैं और जीवन से जुड़े क्या फैसले वे लेते हैं। साथ ही, ये भी कि जो लोग मीडिया से जुड़ी जगहों पर काम करते हैं वे फिल्मों में दिए जाने वाले अचेतन संदेशों के बारे में जागरूकता कैसे फैला सकते हैं।

इस दौरान हमारी मध्यस्थ, संहिता अरनी, को सुनना दिलचस्प रहा, जिन्होंने यौन एवं लैंगिक हिंसा के चित्रण को लेकर अपने कार्य के बारे में बताया। ये एक वेबसाइट है, जहां लोग यौन हिंसा से जुड़ी अपनी बातों को साझा कर सकते हैं, या प्रतिक्रिया दे सकते हैं। ये एक ऐसा मंच है जो सामूहिक संसाधनों के निर्माण में मौन आवाजों को मौका देता है। औरतों के साथ भेदभाव और उनकी महत्ता को कम आंकने के कारण अज्ञात नहीं हैं, लेकिन वैश्विक अभियान की भांति ही, जरूरी है कि हम इससे जुड़े तथ्यों पर एक निरंतर और भरोसेमंद शोधकार्य करें और उस सच को सामने लाएं जिसे नकारा नहीं जा सके। मौसम की जानकारी की तरह ही शायद हमें एक ऐसे ट्रैक मैप की जरूरत है जो हमें हर रोज औरतों की स्थिति के बारे में बताए, जिससे हम जान सकें कि हम कहां हैं और अभी कितना आगे जाना है।

नंदिता दास

www.theweek.in में 24 मई 2015 को प्रकाशित आलेख। लेखिका की अनुमति से इसका हिन्दी अनुवाद कर पुनः प्रकाशित किया जा रहा है।

अनुकमणिका

संकल्पना

हमारी बात : संपादकीय

थीम पेपर: मीडिया में औरतों का चित्रण — 1.
– नंदिता दास

स्त्री और विकास: क्या सोचती हैं जीना डेविस — 4.

पत्रकारिता: ''ई त लइकी बोल तिया'' — 6.
– रजनी शंकर

बदलाव: बेहतरी के लिए बदल रहे विज्ञापन — 9.
–के.वी. श्रीधर

शोध: आधुनिक मगर परंपरा को ढोतीं औरतें — 11.
–दीपांजलि मिश्रा

सर्वप्रथम: भारत की वे महिला पत्रकार जिन्होंने तोड़ी चुप्पी की दीवार — 13.

कानून: क्या कहता है हमारा कानून! — 14.

नई राह: सोशल मीडिया भी आएगा दायरे में — 15.

परामर्श : टीवी के मायाजाल से बचना होगा — 16.
– डॉ. बिन्दा सिंह

कहानी: ग्लानि — 17.
– डॉ. बिन्दा सिंह

साहित्य: नारी तुम केवल श्रद्धा हो... — 18.

लीक से हटकर : न झुकीं न रुकीं, दिखाई नई राह — 20.

नवोदित: क्या कहते हैं आज के कलाकार — 21.

श्रोत

http://thecsrjournal.in
http://aiwefa.org
http://digitallearning.eletsonline.com
www.shodhganga.inflibnet.ac.in
www.yourarticlelibrary.com
www.google.com
www.hindustantimes.com
www.timesofindia.com
www.indiainfoline.com
www.un.org/womenwatch
www.indiaspend.com

Images from

www.google.com
https://in.pinterest.com

मीडिया में औरतों का प्रस्तुतिकरण

1991 में आई फिल्म 'थेलमा एंड लुइस' दो सहेलियों की कहानी है जो एक सड़क यात्रा पर निकलती हैं और बलात्कार का नाकाम प्रयास करने वाले एक व्यक्ति की हत्या कर देने के बाद भगोड़ा घोषित कर दी जाती हैं। इस फिल्म ने हॉलीवुड की मशहूर अभिनेत्री जीना डेविस के जीवन की दिशा बदल दी।

अपनी आंखें बंद कीजिए। देखिए, एक सीईओ को, एक राष्ट्रपति को, हॉलीवुड के एक डायरेक्टर को, एक शीर्ष वैज्ञानिक को, एक मुख्य कोच को, एक शीर्ष शल्य चिकित्सक को, एक नायक को, या फिर बस एक बहुत ही ताकतवर, स्वस्थ और प्रभावशाली व्यक्ति को। कोई विशेष व्यक्ति नहीं बल्कि कोई ऐसा जो इन सभी भूमिकाओं या विवरणों में फिट हो जाए। दिमाग में क्या आता है? वो कैसा दिखता है?

मैं कहता हूं 'वो' क्योंकि इस बात की संभावनाएं अधिक हैं कि आपने एक पुरुष की कल्पना की होगी। अब यहां एक और अच्छा मौका दिया जा रहा है कि जिस व्यक्ति कि आपने कल्पना की है वो श्यामवर्णी, एशियाई, मूल अमेरिकी या लैटिन नहीं है।

क्यों? जैसा कि मुझे हाल ही में हुई एक बातचीत के दौरान अभिनेत्री जीना डेविस ने बताया था, ''मीडिया, मनोरंजन और विज्ञापन उद्योग ऐसी ही छवि बनाता है। स्त्रियों और अन्य समूहों के लिए बहुत कम अवसर है कि वो अलग–अलग भूमिकाओं को निभा सकें। इसके बजाय, औरतें अकसर मुख्य नायक की पत्नी या प्रेमिका की भूमिका ही निभा पाती हैं और इससे समाज में यही संदेश जाता है कि महिलाओं का महत्व कम है।''

और, जीना डेविस इन सबको बदलने में जुटी हैं अपने गैर सरकारी संगठन 'द जीना डेविस इंस्टीच्यूट ऑन जेंडर इन मीडिया', 'द बेनटॉनविले फिल्म फेस्टिवल' तथा '#स्ट्रेंग्थहैजनोजेंडर अभियान' के जरिये। डेविस कहती हैं कि हमारी कोशिश बस इतनी है कि मीडिया में प्रतिनिधित्व को वास्तविक बनाया जा सके।

ये प्रयास इतने महत्वपूर्ण क्यों हैं, इसे समझने के लिए हमें सामाजिक मूल्यों को निर्धारित करने, आपकी पहचान, आपकी सेहत और आपकी बेहतरी को तय करने में मीडिया की भूमिका को समझना होगा। जब आप पैदा होते हैं तो आप एक समान ही लार टपकाते और कुंहलाते हैं। 'एनुअल रिव्यू ऑफ साइकोलॉजी' में प्रकाशित एक समीक्षा आलेख के अनुसार, आमतौर पर एक नवजात के रूप में, आप जेंडर या जाति के आधार पर भेदभाव नहीं करते न ही कोई सेक्सी या जातिसूचक शब्दों का उल्लेख करते हैं, क्योंकि एक नवजात के लिए ऐसा करना अजीब बात हो सकती है। लेकिन उसके बाद समाज के साथ आगे बढ़ते–बढ़ते अपने बारे में और दूसरों के बारे में आपके दृष्टिकोण को आकार मिलने लगता है।

और मीडिया इसका एक बहुत बड़ा हिस्सा है। 2002 में 'साइंस' में प्रकाशित एक अध्ययन के मुताबिक, उच्च विद्यालय स्नातक की शिक्षा पाते–पाते, आप विद्यालय की कक्षाओं में बिताए समय से अधिक समय टीवी देखते हुए बिता चुके होंगे। यह अध्ययन करीब दो दशक पहले का है। अब, नेटफिल्क्स, हुलु और मीडिया के अन्य प्लेटफॉर्म अधिक तैयारी के साथ मौजूद हैं। 'कॉमन सेंस मीडिया' के एक सर्वे में पाया गया कि अमेरिकी किशोर औसतन 9 घंटे रोज मीडिया का इस्तेमाल करते हुए बिताते हैं। अगर सोने और बाथरूम में बिताए गए समय को निकाल दें, तो मीडिया एक किशोर का आधा से अधिक दिन खींच लेता है। अब इसमें विज्ञापन को भी जोड़ दें, जो हर समय हर जगह मौजूद होता है। ऐसे में, इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि विज्ञापन, टेलीविजन और फिल्म जैसे मीडिया श्रोत लगातार आपके स्वास्थ्य को प्रभावित कर रहे हैं और आपके जीवन में बदलाव ला रहे हैं।

डेविस ने मुझे बताया कि एक फिल्म ने उनके जीवन को

उल्लेखनीय रूप से बदल डाला। बजाय इसके कि उन्होंने इस फिल्म में काम किया बल्कि उन्होंने इस फिल्म को देखा भी। छह अकादमी पुरस्कारों के लिए नामित (और सर्वश्रेष्ठ मौलिक पटकथा विजेता) और डेविस एवं सुसैन सेरेन्डॉन अभिनीत 1991 की फिल्म 'थेलमा एंड लुइस' में दो सहेलियों की कहानी है जो एक सड़क यात्रा पर निकलती हैं और बलात्कार का नाकाम प्रयास करने वाले एक व्यक्ति की हत्या कर देने के बाद भगोड़ा घोषित कर दी जाती हैं। फिल्म कई तरीकों से अभूतपूर्व थी, जिसमें दो मजबूत मुख्य महिला चरित्रों ने न केवल प्रताड़क पुरुष चरित्र का विरोध किया बल्कि इसके परिणामस्वरूप समस्याएं भी झेलीं। डेविस ने बताया, ''इस फिल्म के बारे में लोगों की तरफ से इतनी सकारात्मक प्रतिक्रियाएं आईं कि इसने मेरी जिंदगी को बदल कर रख दिया। इसने दिखा दिया कि कैसे महिला चरित्र लोगों के लिए प्रेरक हो सकती हैं।'' और इसके बाद अकादमी अवार्ड विज. ता इस अभिनेत्री का नया सफर शुरू हुआ और 2004 में उनकी संस्था 'जेंडर इन मीडिया' अस्तित्व में आई।

अपनी स्थापना के बाद से इस संस्था के संकलन को ''20 वर्ष से अधिक समय तक पारिवारिक मनोरंजन में जेंडर की मौजूदगी पर सबसे बड़े शोध'' के तौर पर जाना जाता है। डेविस बताती हैं कि हम शोध और आंकड़ों को सीधे तौर पर उपलब्ध कराते हैं ताकि हर कोई ये देख सके और जान सके कि वास्तविक स्थिति क्या है। कुछ मुख्य परिणाम इस प्रकार हैं:

- विज्ञापनों में पुरुष चरित्रों की संख्या महिला चरित्रों की तुलना में दोगुना होती है: विज्ञापनों में लैंगिक भेदभाव पर किए अध्ययन में यह भी पता चलता है कि जहां पुरुष प्रधान विज्ञापनों की संख्या 25 प्रतिशत थी वहां महिला प्रधान विज्ञापनों की संख्या केवल 5 प्रतिशत ही थी।
- फिल्मों में, पुरुष चरित्रों को महिलाओं की तुलना में स्क्रीन पर आने का दोगुना मौका मिलता है और वे महिला चरित्रों की तुलना में दोगुना अधिक संवाद बोलते हैं:

यह शोध जीना डेविस समावेशी भागफल (जीडी–आईक्यू) सॉफ्टवेयर टूल द्वारा किया गया था जिसे जीना डेविस इंस्टीच्यूट तथा दक्षिणी केलिफोर्निया विश्वविद्यालय की टीम के द्वारा विकसित किया गया है। यह सॉफ्टवेयर किसी भी फिल्म को स्कैन कर सकता है और उसके विभिन्न चरित्रों द्वारा स्क्रीन पर बिताए गए समय और संवादों को अपने–आप पता लगा सकता है।

- मीडिया में सकारात्मक महिला रोल मॉडल औरतों को अधिक महत्वाकांक्षी और मुखर बना सकते हैं और उन्हें उत्पीड़न वाले रिश्तों से बाहर निकलने में मदद भी कर सकते हैं: यह 2016 में नौ देशों में (ब्राजील, चीन, भारत, सउदी अरब, दक्षिण अफ्रीका, रूस, ऑस्ट्रेलिया, ब्रिटेन और अमेरिका) 4300 औरतों पर किए गए सर्वे पर आधारित था। करीब आधी महिलाओं ने माना कि महिला रोल मॉडल ने उन्हें और महत्वाकांक्षी होने के लिए प्रेरित किया जबकि नौ में से एक महिला ने माना कि इससे उन्हें अपने उत्पीड़क रिश्तों से बाहर निकलने में मदद मिली।
- कई महिला चरित्रों के व्यवहार और शरीर अवास्तविक होते हैं: चार अध्ययनों ने अलग–अलग कार्यक्रमों, एनिमेशन और लाइव कार्यक्रमों में महिला चरित्रों की समीक्षा कर पाया कि उनके स्तन आम तौर पर ज्यादा बड़े, कमर अत्यधिक पतली होती है और शरीर का आकार अवास्तविक लगता है। ऐसी छवियां किसी प्लास्टिक सर्जन के लिए अच्छी हो सकती हैं लेकिन अपने शरीर, आत्मविश्वास, खाने की आद. तों और लड़कियों एवं महिलाओं की अन्य आदतों के लिए बिलकुल नहीं।
- महिला नेताओं, वैज्ञानिक, इंजीनियर या गणित में महिला प्रधान चरित्रों की कमी: 11,297 चरित्रों पर किए गए अध्ययन में पाया गया कि केवल 3.4 प्रतिशत कारोबारी महिला चरित्र और 4.5 प्रतिशत महिला राजनेताओं वाले चरित्र ही पारिवारिक फिल्मों में पाए गए। और महिला संपादक, निवेशक, डेवलपर और मुख्य न्यायाधीश? शून्य। विज्ञान, इंजीनियर और गणित के लिए महिला चरित्र केवल 21.1 प्रतिशत ही पाए गए। फिल्मों और टेलीविजन में लोग जो देखते हैं, अपने करियर को चुनने में उसका अत्यधिक महत्व होता है।

पहले, टेलीविजन, फिल्म और विज्ञापनों में संलिप्त लोग इस बात को नियंत्रित करते थे कि आम लोग कौन सी भूमिकाओं और छवियों को देखेंगे। वे या तो उन चीजों को परोसते थे जिन्हें लोग देखना चाहते थे या उन चीजों को वो जिन्हें वे चाहते थे कि लोग देखें। बहरहाल, सोशल मीडिया और इंटरनेट इन चीजों को बदलने में मददगार साबित हो रहे हैं। आज के समय में, कोई भी कहीं से भी तस्वीर या वीडियो को डाउनलोड कर सकता है। ढ

13 मार्च 2018 को www.forbes.com प्रकाशित ब्रुस वाई ली की रिपोर्ट का हिन्दी रूपांतरण।

पत्रकारिता

''ई त लईकी बोल तिया''

महिलाओं को एक विरोधाभासी परिस्थिति का हमेशा से सामना करना पड़ा है। महिला होने के नाते उन्हें कमजोर भी आंका गया और जब अपनी मेहनत के दम पर महिला पत्रकारों ने कुछ कर दिखाया, तो इस तर्क के बिना पर कि ''महिला होने के नाते उन्हें बहुत कुछ आसानी से हासिल हो गया'', उनकी काबिलियत को ही नकार दिया जाता है।

रजनी शंकर

(पत्रकारिता में 25 वर्षो का अनुभव, वर्तमान में विशेष संवाददाता, हिन्दुस्थान समाचार, पूर्व ब्यूरो चीफ, यूएनआई पटना एवं नागपुर)

बात उन दिनों की है जब लालू प्रसाद यादव बिहार के मुख्यमंत्री थे। जहां तक मुझे याद आ रहा है यह 1993 की घटना है। मुख्यमंत्री को यदि कुछ विशेष बात करनी होती थी तो वह न्यूज एजेंसी को ही खोजा करते थे। यू एन आई के पटना दतर में तत्कालीन मुख्यमंत्री लालू यादव का फोन यदा–कदा आया करता था। यह वह दौर था जब लैंडलाइन फोन में बटन नहीं हुआ करता था और नंबरों को घुमाकर डायल करना होता था। फोन की घंटी बजते ही मैंने फोन उठाया। उधर से बताया गया कि मुख्यमंत्री निवास से फोन है और किसी रिपोर्टर से मुख्यमंत्री बात करना चाहते हैं। मैंने कहा ''बात कराएं मैं रिपोर्टर बोल रही हूं।'' उधर से जब लालू यादव ने फोन पर ''हेलो'' कहा तो प्रत्युत्तर में मैंने भी हेलो कह कर उनका अभिवादन किया। अचानक उधर से आवाज आई, मैंने सुना लालू जी कह रहे थे अपने लोगों से ''कहां फोन लगा देलस ह हो? ई त लईकी बोल तिया''! इतना कहते ही लालू यादव ने फोन रख दिया।

1960 के दशक से ही पत्रकारिता के क्षेत्र में अपना कदम रखने और 1980 के दशक में उनकी संख्या बढ़ने के बावजूद, 1990 के दशक में भी किसी महिला का रिपोर्टर होना, वह भी न्यूज एजेंसी में, कोई सोच भी नहीं सकता था। एक बार पटना में महिला पत्रकारों के एक कार्यक्रम में बिहार की तत्कालीन मुख्यमंत्री राबड़ी देवी आई थीं और साथ में लालू यादव भी थे। मैंने इस घटना की चर्चा लालू यादव के सामने कार्यक्रम में ही किया भी था।

एक वह दौर था और एक आज का समय है। तस्वीरें बहुत कुछ बदली हैं, नहीं बदली है तो सिर्फ मीडिया के क्षेत्र में महिलाओं को लेकर लोगों की सोच। अपने सिद्धांत, उसूल और आईडियोलॉजी तथा डिग्निटी यानी अस्मिता की रक्षा करते हुए यदि आगे बढ़ना है तो महिलाओं के लिए डगर अभी भी कठिन है। पत्रकारिता के क्षेत्र में महिलाओं के लिए एक बहुत बड़ी विडंबना है कि कई बार बेहतर काम करने और अधिक योग्यता रखने के बावजूद उन्हें हर पल अपनी योग्यता सिद्ध करनी पड़ती है।

महिलाओं को एक विरोधाभासी परिस्थिति का हमेशा से सामना करना पड़ा है। महिला होने के नाते उन्हें कमजोर भी आंका गया और जब अपनी मेहनत के दम पर महिला पत्रकारों ने कुछ कर दिखाया, तो इस तर्क के बिना पर कि ''महिला होने के नाते उन्हें बहुत कुछ आसानी से हासिल हो गया'', उनकी काबिलियत को ही नकार दिया जाता है। पत्रकारों में कुछ ऐसा तबका आज भी है जो महिलाओं को गंभीरता से नहीं लेता और उन्हें महज एक इंटरटेनमेंट के ऑब्जेक्ट के रूप में देखता है। ऐसी परिस्थितियों में अपने लिए जगह बना पाना महिलाओं के लिए कोई बहुत आसान काम नहीं था।

दरअसल महिलाओं के लिए पत्रकारिता कोई चुनौती भरा काम नहीं है। चुनौती है, तो उनके लिए पत्रकारिता के क्षेत्र में उत्पन्न की गई परिस्थितियां और साथ ही घर–परिवार की रोजमर्रा की जिम्मेदारियों और पत्रकारिता क्षेत्र की परिस्थितियों के बीच सामंजस्य बिठाना। एक महिला पत्रकार की जिंदगी निकल जाती है सामंजस्य बिठाते–बिठाते। कइयों ने तो इसकी वजह से पत्रकारिता के क्षेत्र से तौबा ही कर लिया।

1993 में इस क्षेत्र में कदम रखने के बाद से अभी तक कई खट्टे–मीठे अनुभवों से गुजरना पड़ा। परिस्थितियां कई बार ऐसी भी आईं जब अपने स्वाभिमान की रक्षा करने के लिए डट कर खड़ा होना पड़ा। झुकाने की कोशिश कई बार की गई किंतु अपने वजूद को और अपनी अस्मिता को बचाते हुए लंबा सफर तय करते हुए मैनेजमेंट स्तर तक पहुंच गई। फिर भी सच तो यह है कि जब महिला पत्रकार मैनेजमेंट के स्तर तक पहुंचती है तो पुरुष कर्मी अपने मेल इगो के कारण उसकी बातों को मानना अपनी तौहीन समझते हैं। मीडिया संस्थानों में अपनी मेहनत के बदौलत सम्मानजनक पदों तक पहुंची महिलाओं को आज भी लगता है कि मीडिया में महिलाओं की स्थिति और बेहतर होनी चाहिए।

मेट्रोपॉलिटन शहरों की तस्वीर छोटे शहरों से काफी अलग है। बड़े शहरों में महिला पत्रकारों की संख्या भी अच्छी खासी है। मीडिया संस्थानों में पुरुष कर्मियों और महिला पत्रकारों के बीच राजनीतिक उठापटक भी खूब चलती रहती है। इस तरह के राजनीतिक खेल का सामना छोटे–छोटे शहरों की महिला पत्रकारों को खूब झेलना पड़ता है। पुरुष सहकर्मियों की कोशिश यही होती है कि महिला पत्रकार किसी भी परिस्थिति में आगे बढ़ ही ना पाएं। छोटे शहरों में महिला पत्रकारों की स्थिति भी दोयम दर्जे की है।

पत्रकार सिर्फ एक पत्रकार होता है, बस कलम का सिपाही। वह न

महिला है और न पुरुष, फिर भी दुर्भाग्यवश पत्रकारिता में भी जेंडर डिस्क्रिमिनेशन– महिला–पुरुष का विभेद है।

मीडिया में महिलाओं की स्थिति की बात अगर करें तो मीडिया संस्थानों के अंदर उनकी स्थिति और मीडया में उन्हें किस तरह पेश किया जाता है इसका आकलन जरूरी है। वाशिंगटन डीसी स्थित वूमेन मीडिया सेंटर की कम्युनिकेशन की चांसलर डायरेक्टर क्रिस्टल विलियम्स मानती हैं कि महिलाओं की योग्यता और टैलेंट की जगह उनके शरीर और उनकी सुंदरता को अधिक तवज्जो दी जाती है। वर्ष 2018 के नवंबर माह में मीडिया में महिलाओं की स्थिति पर अमेरिका में हुए एक सेमिनार में क्रिस्टल कहती हैं कि न्यूज रूम में पुरुषों का ही वर्चस्व है जो अमेरिका की कुल पत्रकारों का 68 प्रतिशत है। इससे साफ पता चलता है कि अमेरिका में भी महिला पत्रकारों का प्रतिनिधित्व बहुत कम है। जब तक महिला पत्रकारों की संख्या नहीं सुधरेगी तब तक मीडिया संस्थानों के अंदर महिलाओं की स्थिति और मीडिया द्वारा महिलाओं से जुड़े मुद्दे पर पेश की गई तस्वीर में भी सुधार नहीं हो सकेगा। क्रिस्टल मानती हैं कि फेमिनिज्म को लेकर भ्रांतियां फैलाई गई हैं जबकि फेमिनिज्म का सही अर्थ सब को समान रूप से समान अवसर प्रदान करना है।

अमेरिका में हुए सेमिनार और उससे जुड़ी क्रिस्टल की रिपोर्ट को पढ़ते समय जेहन में एक पुरानी घटना ताजा होने लगी थी। दूरदर्शन में समाचार पढ़ने के लिए अभ्यर्थियों का चयन होना था। सिलेक्शन कमिटी में मुझे भी रखा गया था। दूरदर्शन के एक अधिकारी ने चयन प्रक्रिया प्रारंभ होने से पूर्व धीरे से मुझे आगाह कर दिया कि चयन करते समय कैंडिडेट की सुंदरता का भी ध्यान रखना है। यहां भी सौंदर्य एक बार फिर टैलेंट पर हावी हो रहा था। दुर्भाग्यवश सुंदर समाचार वाचिका कई बार जिला बदर को जिला "बंदर" पढ़ती देखी गई।

पूरी दुनिया में डिजिटल मीडिया की क्रांति हो रही है। विलियम्स क्रिस्टल कहती हैं, डिजिटल मीडिया महिलाओं के लिए बहुत ही असुरक्षित क्षेत्र है। उनका यह कहना है कि अधिकांशतः जब भी कोई महिला डिजिटल मीडिया के माध्यम से अपनी आवाज उठाती है तो कई बार देखा गया है कि पुरुष वर्ग एकजुट होकर उसे परेशान करने लगते हैं। उसकी आवाज को दबाने के लिए कई बार भद्दे शब्दों का इस्तेमाल कर महिला को प्रताड़ित भी करते हैं। बांग्लादेश की प्रसिद्ध लेखिका तस्लीमा नसरीन का अनुभव भी कुछ ऐसा ही है। तस्लीमा नसरीन कहती हैं जो समाज में है, उसी की प्रतिछवि सोशल मीडिया में भी दिख रही है। घर और घर से बाहर महिलाओं को लांछित होना पड़ता है, सोशल मीडिया में भी उन्हें ठीक वैसी उपेक्षा मिलती है। डिजिटल मीडिया या सोशल मीडिया एक ऐसा प्लेटफार्म है जहां कई बार देखा गया है कि पुरुष अपनी नारी विद्वेषी भावना को बेहि. चक प्रकट कर देता है। तस्लीमा नसरीन भी इसकी शिकार हैं और यह पीड़ा केवल तस्लीमा नसरीन की अकेले की नहीं बल्कि कई महिलाओं की है। ब्रिटेन जैसे विकसित देश में भी जिन 10 पत्रकारों को डिजिटल प्लेटफॉर्म या सोशल मीडिया में एब्यूज किया गया उनमें 8 महिलाएं थी और दो अश्वेत पुरुष थे। सोशल मीडिया में अधिकांशतः महिलाओं को नीचा दिखाने की कोशिश होती रही है। इसका ताजात. रीन उदाहरण नोटबंदी के दौरान देखने को मिला जब "सोनम गुप्ता बेवफा" है का पोस्ट सोशल मीडिया में वायरल होने लगा। फितूर सूझा भी, तो महिला का ही नाम क्यों? कोई काल्पनिक पुरुष नाम क्यों नहीं?

कुछ आंकड़ों की चर्चा करना यहां आवश्यक महसूस हो रहा है। महिलाओं से जुड़े सामाजिक मुद्दों को 9 प्रतिशत से भी कम स्थान मीडिया में मिलता है जबकि सनसनीखेज मामले उनसे जुड़े हुए हों तो उन्हें 52 से 63 प्रतिशत स्थान अखबारों में मिल जाता है। न जाने क्यों महिलाओं को विक्टिम के रूप में दिखाने का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। भारत में छपने वाले अखबारों पर निगाह दौड़ायें तो पाते हैं कि जो कुछ भी अखबारों में छपता है, उनमें केवल 2 प्रतिशत ही महिलाओं से जुड़े मुद्दे होते हैं। दरअसल मीडिया संस्थानों में निर्णय लिए जाने वाले समूहों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बहुत कम है और केवल 27 प्रतिशत महिलाएं ही मैनेजमेंट के स्तर तक पहुंच पाती है। इसी वजह से महिलाओं की मीडिया में स्थिति कुछ खास अच्छी नहीं है।

पूरे विश्व में देखा जाए तो महिला पत्रकार महज 35 प्रतिशत ही हैं और एशिया के देशों में पुरुषों के मुकाबले महिलाओं का अनुपात 4 :1 का है। एशिया महादेश में संस्था के शीर्ष पदों पर केवल 10 प्रतिशत ही महिलाएं पहुंच पाती हैं। एशिया पेसिफिक के मीडिया संस्थानों में 30 प्रतिशत ही महिला रिपोर्टर हैं, 16 प्रतिशत फीचर लेखन में हैं, केवल 11 प्रतिशत संपादक हैं और 10 प्रतिशत कॉपी संपादक। एशिया पेसिफिक में 34 प्रतिशत महिला पत्रकार यौन उत्पीड़न की शिकार हुईं। 59 प्रतिशत अपने बॉस को दोषी मानती हैं। "मी टू" का मूवमेंट, जिसके बाद परत दर परत मामले खुलते गये, उससे भी साफ है कि किस हद तक महिला पत्रकारों को विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। रिपोर्टिंग के क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति आज भी नहीं सुधरी है और भारत में उनकी संख्या काफी कम है। महिला रिपोर्टरों

को अक्सर संस्कृति, फिल्म, लाइफ स्टाइल जैसे हल्के–फुल्के मुद्दों पर ही काम करने को दिया जाता है।

''पॉलीटिकल जर्नलिज्म एक पुरुष प्रधान पेशा है'', इस सोच से मैं निजी तौर पर इत्तेफाक नहीं रखती, क्योंकि मेरा मानना है आज के समय में जब महिलाएं ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र से लेकर खेल के मैदान, शिक्षा के क्षेत्र से लेकर किसानी तक में उल्लेखनीय उपलब्धि दर्ज कर रही हैं तो पॉलीटिकल जर्नलिज्म उनके लिए एक बहुत छोटी सी चीज है। अपनी संवेदनशीलता, पैनी निगाह और चीजों के सूक्ष्म आकलन करने की अद्भुत क्षमता की बदौलत महिलाएं अपने आप को बेहतर पॉलीटिकल जर्नलिस्ट साबित कर सकती हैं। आज की तारीख में कुछ महिला पत्रकार पॉलीटिकल जनरलिज्म बखूबी कर रही हैं।

महिलाओं की भूमिका मीडिया के अंदर बढ़ाने के लिए और साथ ही मीडिया में महिलाओं छवि बेहतर बनाने के लिए यूनेस्को की देखरेख में 1978 में वीमेन फीचर सर्विस शुरू हुई जो आज एक स्वतंत्र इकाई के रूप में काम कर रहा है। इन सब प्रयासों से महिलाओं की संख्या और उनकी स्थिति मीडिया में बेहतर हुई है। ज्ञान, गुण, वैचारिक शक्ति, लेखन, तर्क और प्रस्तुति के कारण प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक, डिजिटल प्लेटफॉर्म पर महिला पत्रकारों की संख्या बढ़ रही है। ऐसा भी नहीं है पूरा का पूरा पुरुष वर्ग महिला पत्रकारों को दोयम दर्जे का मानता है बल्कि पुरुष वर्ग का एक बड़ा हिस्सा यह मानता है कि जीवन के सभी क्षेत्र में अपनी भूमिका निभाने वाली महिलाएं पत्रकारिता के क्षेत्र में भी अपनी भूमिका बखूबी निभा रही हैं। कुछ महिला पत्रकारों ने शांति तथा समाज के विभिन्न क्षेत्रों के लिए पत्रकार के रूप में अहम भूमिका निभाई हैं।

इन उपलब्धियों के बावजूद महिला पत्रकारों की स्थिति को सुधारने के लिए और मीडिया में उनके बेहतर पोट्रेयल के लिए बहुत कुछ करना बाकी है। मीडिया संस्थानों के अंदरूनी जनतंत्र और मानवाधिकारों की स्थिति को देखा जाए तो पत्रकारिता में महिलाओं की संख्या बढ़ने के बावजूद लिंग आधारित भेदभाव आज भी है। लैंगिक समानता का प्रावधान भारत के संविधान में है फिर भी यह भेदभाव अभी भी व्याप्त है। सतही तौर पर देखें तो कई बार ऐसा लगता है कि इस तरह का कोई भी भेद नहीं है किंतु जब व्यवहारिक दृष्टिकोण से देखा जाता है तो महिला पत्रकार काम और वेतन दोनों ही मामले में आज भी भेदभाव का शिकार हो रही हैं। इस स्थिति से चिंतित इंटरनेशनल फेडरेशन ऑफ जर्नलिस्ट के एक सम्मेलन में महिला पत्रकारों के लिए जेंडर काउंसिल गठित करने का निर्णय लिया गया लेकिन यह काम कितना कारगर हो सका यह अभी भी स्पष्ट नहीं है।

विज्ञापन आज हमारे समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा हो चला है। इन विज्ञापनों पर एक नजर डालने पर वहां भी महिलाओं को कुछ इस तरह परोसा जाता है कि वह आसानी से हजम होने वाला नहीं। पुरुषवादी दृष्टि केवल समाचारों तक ही नहीं बल्कि विज्ञापनों में भी साफ दिखता है। इन सब परिस्थितियों में परिवार हो या समाज, या मीडिया ही क्यों न हो महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए वैचारिक आंदोलन की आवश्यकता है ताकि महिलाओं के प्रति मीडिया के अंदर और मीडिया के बाहर सम्मानजनक स्थिति बन सके।

सीरियल और सिनेमा को भी मीडिया में एक बहुत बड़े हिस्से के रूप में देखा जा सकता है। पिछले कुछ वर्षों के कालंतराल में स्थितियां जो उभरी हैं, वह महिलाओं की छवि के लिए सुखद नहीं कही जा सकतीं। सिनेमा के गानों का अत्यधिक असर रहता है लोगों के जेहन में। कुछ गानों के शब्दों में महिलाओं का स्वरूप अत्यंत निम्न स्तर और नकारात्मक रूप परोसा जा रहा है। आज के दौर के गानों में किसी स्त्री को "फेविकोल से सीने पर चिपका लेने और उसे तंदूरी मुर्गी कबाब लेग पीस और न जाने क्या–क्या बताते हुए अल्कोहल से गले के अंदर गटका लेने की ध्वनी सुनाई देती है। चमक–दमक दुनिया में सिने जगत का गहरा प्रभाव रहता है ऐसे में डायरेक्टर प्रोडूसर को भी महिलाओं के प्रति गहरी संवेदनशीलता दिखाने की आवश्यकता है अन्यथा आज हम ऐसे दौर में हैं जहां ''मुन्नी तो बदनाम हो जाती है पर मुन्ना, चाहे वह 'भाई' ही क्यों न हो, एमबीबीएस हो जाता है''।

बदलाव

बेहतरी के लिए बदल रहे विज्ञापन

फेयर एंड लवली ब्रांड के विज्ञापनों में भी क्रांतिकारी परिवर्तन आए हैं। ''शादी के लिए या पति को रिझाने के लिए गोरी बनें'' ;80 के दशक में जूही चावला ने इसके विज्ञापन में काम किया था जिसमें फेयर एंड लवली क्रीम लगाने के बाद उनके पति कहते हैं ''मेरी शीला कितनी गोरी कितनी प्यारी'' की मुहिम से आगे चलकर अब यह आत्मविश्वासी बनने, स्मार्ट दिखने और समाज में एक सफल गायिका और कमेंटेटर बनने तक का सफर तय कर रही है।

के.वी. श्रीधर

(पूर्व चीफ क्रियेटिव ऑफिसर, लियो बर्नेट, भारतीय उपमहाद्वीप)

80 के दशक के सिगरेट के विज्ञापन से लेकर आज के *जियो सर उठा के,* के विज्ञापनों के साथ ही औरतों की छवि में कई सकारात्मक बदलाव हुए हैं। सूचना तंत्रों में औरतों की प्रस्तुति किए जाने को लेकर समुदाय अब अधिक संवेदनशील है और वो इस बात को लेकर लगातार सजग है कि इन विज्ञापनों का दर्शकों पर और अंतिम रूप से समाज पर क्या असर पड़ रहा है।

यदि मैं भारतीय विज्ञापनों में नारियों की प्रस्तुति के बारे में चीजों को याद करूं तो कुछ विज्ञापन मेरे दिमाग में कौंधते हैं और इस ओर हुई क्रांति के बारे में भी बताते हैं–

80 के दशक में, जब विज्ञापन ब्रिटिश प्रभाव से मुक्त नहीं हो सके थे, तब ज्यादातर विज्ञापनों में अंग्रेजी जीवनशैली हावी थी और इनमें कुलीन समाज के उत्पाद शामिल होते थे। उनमें सिगरेट के ब्रांड होते थे, जिनके विज्ञापन में कम कपड़ों में औरतें पुरुष मॉडल के आगे–पीछे घूमती रहती थीं और एक विज्ञापन में एक संदेश आता था 'मर्दों की खुशी के लिए'। उन दिनों अनुराधा पटेल द्वारा अभिनीत ब्रुक 'बांड स्पेशल चाय' का विज्ञापन खासा लोकप्रिय था। उस विज्ञापन में प्रचार को बेहतर बनाने के लिए हर चीज मौजूद थी, लेकिन इसने उस रूढ़िवादी सोच को बढ़ावा दिया जिसके मुताबिक, औरतें केवल घरेलू कामकाज के लिए ही होती हैं और वे तभी अच्छी साबित होती हैं जब उनके पति उनके काम को मान्यता दें और उनकी सराहना करें; विज्ञापन के अपने शुरुआती दिनों में मैं भी इसका एक हिस्सा था।

80 के दशक के विज्ञापनों में संतुलन के कई तत्व भी थे। चाय के ही एक अन्य ब्रांड डबल डायमंड चाय के विज्ञापन में, एक युवा लड़की ने काम किया था जो आत्मविश्वासी, आजाद और आधुनिक

विचारों को प्रचारित करती नजर आती थी। रूढ़िवादिता को तोड़ने में एलेक पद्मसी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और ललिताजी तथा लिरिल गर्ल जैसे महिला चरित्रों को सामने रखा। वे अपनी मां से प्रभावित थे जो एक समझदार और बुद्धिमान महिला थीं और उस वक्त की मध्यवर्गीय पत्नियों का सही प्रतिनिधित्व करती थीं। ललिताजी अपने निर्णय खुद लेती थीं और उनके पास उन्हें सही साबित करने का तर्क होता था। इसके बाद, लिरिल गर्ल टेलीविजन विज्ञापनों के इतिहास में सबसे लंबा चलने वाला विज्ञापन अभियान रहा। एलेक परीकथा भारतीय पत्नियों की फंतासी और ताजगी के अहसास का मिश्रण होती थी। जहां आलोचकों ने झरने के नीचे नहाती बिकिनी गर्ल को खारिज कर दिया वहीं आम उपभोक्ताओं ने इस विज्ञापन को खूब पसंद किया। हर भारतीय महिला ने पश्चिमी स्टाइल के बाथटब और महंगे बाथरूम से मुक्त होकर स्वयं को झरने के नीचे नहाते हुए सोचा।

मुझे अब भी याद है 90 के दशक के अंत में, बाजारवादी लोग आधुनिक महिला उसे समझते थे जो साड़ी छोड़कर सलवार समीज पहनती थी। कितनी छोटी सोच थी, और ये तब तक चलता रहा जब तक कि पीएंडजी इस वास्तविक समझ को लेकर नहीं आया कि आधुनिक स्त्री चाहती हैः समानता, वो भी एरियल हसबैंड अभियान के साथ जिसका संदेश था ''कुछ खोने के लिए कुछ पाना पड़ता है।''

रूढ़िवादी विचार कुछ अपवादों के साथ 90 के दशक तक चलते रहे। 2000 में हमने कुछ ऐसे विज्ञापन देखे जिनमें औरतों की स्थिति को प्रमुखता से दिखाया गया था। उस समय फेमिना का एक विज्ञापन था जिसमें एक युवती को दुल्हन के लिबास में दिखाया जाता है और दर्शकों को ऐसा लगता है कि शादी का पूरा माहौल उस युवती के विवाह के लिए है, लेकिन अंत में उन्हें पता चलता है कि पूरा माहौल युवती की मां के विवाह के लिए सजाया गया था जिसके पति की मौत के बाद पुनर्विवाह का आयोजन किया जा रहा था। 2008 में एचडीएफसी स्टैंडर्ड का एक विज्ञापन आया था जिसमें *सर उठा के जियो* का संदेश दिया गया था। विज्ञापन में तूलिका शर्मा नाम की एक

बदलाव

युवा बेटी अपने पिता के नाम से एक नई कार के लिए अपने बचत खाते से एक चेक काटते हुए कहती है ''तूलिका शर्मा चाहती है कि उसके डैड स्टाइल से ट्रैवल करें'', उसके पिता थोड़े संकोच से लेकिन चेहरे पर गर्व का भाव लिए हुए उस चेक को स्वीकार करते हैं।

हाल ही में तनिष्क के विज्ञापन ने बहुत ही साहसी संदेश दिया है। इसमें एक बच्चे की मां और श्यामवर्णी एक महिला भारतीय रीति से पुनर्विवाह करने जा रही है। इस विज्ञापन को पहले इंटरनेट पर जारी किया गया जहां इसे बहुत ज्यादा पसंद किया गया और यूट्यूब पर पहले ही हफ्ते में इसे करीब आधा मीलियन हिट प्राप्त हुआ। ज्यादातर कमेंट में इसे 'खूबसूरत' और 'इसे देखकर मेरी आंखों में आंसू आ गए' बताया गया। इसके अलावा, बॉनर्विटा का नया विज्ञापन मर्मस्पर्शी है जिसमें एक बॉक्सर अपनी हेलमेट को हटाता है और हमें पता चलता है कि ये तो एक लड़की है।

औरतों की छवि को कुछ ज्यादा ही कमजोर दिखाने वाले फेयर एंड लवली ब्रांड के विज्ञापनों में भी क्रांतिकारी परिवर्तन आए हैं। ''शादी के लिए या पति को रिझाने के लिए गोरी बनें'' (80 के दशक में जूही चावला ने इसके विज्ञापन में काम किया था जिसमें फेयर एंड लवली क्रीम लगाने के बाद उनके पति कहते हैं ''मेरी शीला कितनी गोरी कितनी प्यारी'') की मुहिम से आगे चलकर अब यह आत्मविश्वासी बनने, स्मार्ट दिखने और समाज में एक सफल गायिका और कमेंटेटर बनने तक का सफर तय कर रही है।

मैं अब भी विज्ञापनों में महिलाओं का चित्रण और बेहतर बनाने के लिए बहस करता हूं क्योंकि डिओडरेंट, वाशिंग पाउडर, ऑटोमोबाइल, रियल इस्टेट और एफएमसीजी के ज्यादातर उत्पादों में अब भी औरतों को रूढ़िवादी तरीके से ही दिखाया जा रहा है। लेकिन तथ्य ये भी है कि कई सकारात्मक बदलाव हुए हैं जिनसे इंकार नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, केबीसी हमें भविष्य के और बेहतर होने की उम्मीद देता है।

20 मार्च 2014 को www.exchange4media.com में प्रकाशित आलेख का हिन्दी रूपांतरण।

रुख बदला है

मणिकांत ठाकुर

(वरिष्ठ पत्रकार)

यह साफ दिखता है कि मीडिया क्षेत्र की महिलाएँ दिन–ब–दिन सशक्त हो रही हैं। न सिर्फ पेशागत योग्यता/क्षमता में, बल्कि मनोबल और आत्मविश्वास में भी उनका सशक्तीकरण जाहिर हो रहा है।

लेकिन हाँ, मर्द और स्त्री के बीच सबलता और निर्बलता का फर्क दिखाने वाला नजरिया किसी–न–किसी रूप में सामने आ ही जाता है। खासकर जिस महकमे में पुरुष–वर्चस्व प्रभावी रहता है, वहाँ महिलाओं की स्थिति बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेने जैसी नहीं बन पाती है। यानी पुरुष बहुल मीडिया संस्थानों में कार्यरत महिलाकर्मियों को इस 'फर्क' का अहसास होता ही है।

महानगरों या बड़े शहरों में भले ही इस तरह का भेद कम हो रहा हो, लेकिन बाकी हिस्सों में महिला मीडियाकर्मियों की तादाद बहुत ही कम होना एक गौरतलब पहलू है। पत्रकारिता के पेशे में बिना किसी हिचकिचाहट के खुल कर उतरने वाली लड़कियाँ पहले तो दुर्लभ ही थीं, अभी भी सुलभ नहीं हैं। ऐसा क्यों है, का जवाब किसी एक कारण में नहीं, कई कारणों में मिलता है। एक बड़ी वजह ये है कि मीडिया का क्षेत्र अभी भी सामान्य परिवारों की नजर में वर्जनामुक्त नहीं हो पाया है। कार्यस्थल पर शारीरिक या मानसिक शोषण की आशंकाओं से घिरी नौकरियों में इस पेशे को भी शुमार कर लिया गया है। माना जाता है कि लड़कियों के लिए सुरक्षित माहौल में स्वस्थ मन से खुद्दारी के साथ काम करने जैसे अवसर इस क्षेत्र में भी कम हैं। बावजूद इसके, खुद को बचाते/सम्हालते हुए आगे बढ़ने का माद्दा महिला पत्रकारों में लगातार बढ़ता हुआ दिखने लगा है।

जहाँ एक तरफ टेलीविजन–पत्रकारिता के ग्लैमर ने लड़कियों को इस क्षेत्र में प्रवेश के लिए उत्साहित किया है, वहीं दूसरी तरफ समाज ने भी इस बाबत वर्जनाओं में ढील दी है। यानी रुख बदला है। उत्तरोत्तर बेहतर होती जा रही तकनीक ने जब से पत्रकारिता की प्रस्तुति संबंधी मुश्किलें आसान की है, तब से मीडिया जगत में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है। परेशानियाँ वहाँ पनपती हैं, जहाँ एक साथ काम करने वालों का संयम टूटता है। स्वाभाविक है कि अपनी सोच और क्षमता को ऊँचे मानदण्ड पर ले जाने की लगन जिनमें होती है, उनके पास अपसंस्कृति में फँसने का समय नहीं होता। एक मजबूत मन 'मी टू' की नौबत ही क्यों आने देगा? जिस तेज गति से हरेक क्षेत्र में महिलाओं का दखल हो रहा है, उसे देखते हुए नहीं लगता कि 'पुरुष प्रधान मीडिया' वाली मौजूदा स्थिति बहुत दिनों तक टिक पाएगी।

आधुनिक मगर परंपरा को ढोतीं औरतें

बीस साल पहले, एक मॉडल का वजन महिलाओं के औसत वजन से 8 प्रतिशत कम होता था लेकिन आज यह 23 प्रतिशत तक कम होता है। काया, आहार और सुंदरता को लेकर एक आम महिला को मीडिया के माध्यम से जो संदेश दिया जाता है वो यही होता है कि उनका शरीर परफेक्ट रहने के लिए ही बना है और उन्हें इस पर हमेशा काम करते रहना होगा।

दीपांजलि मिश्रा

(असिस्टेंट प्रोफेसर, केआईआईटी विश्वविद्यालय)

सालों से ये विषय चर्चा का रहा है कि क्या फिल्में समाज का प्रतिरूप होती हैं! भारत में अधिसंख्य लोग ये मानते हैं कि फिल्मों में वही दिखाया जाता है जो समाज में होता है। भले ही यह प्रश्न विवादित हो लेकिन इस बात में कोई विवाद नहीं है कि फिल्मों का हमारे सामाजिक–सांस्कृतिक परिदृश्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जहां तक विज्ञापनों में महिलाओं की प्रस्तुति का सवाल है तो यहां हालात दिनों–दिन बिगड़ते ही जा रहे हैं। ज्यादातर विज्ञापनों, जिनमें आजकल के विज्ञापन भी शामिल हैं, में महिलाओं को या तो कपड़े साफ करते, खाना बनाते, बर्तन धोते, परिवार के अन्य सदस्यों को खाना परोसते या पति को जुकाम लगने पर उसे बेहतर महसूस कराते हुए ही दिखाया जाता है। औरत को सिरदर्द या कमर दर्द होने के बाद भी घर का सारा काम करते हुए दिखाया जाता है। ऐसे विज्ञापन लिंगवाद को बढ़ावा देते हैं। ये बरसों पुरानी इस धारणा को ही बल देते हैं कि औरत को अपने आराम और सुविधा का त्याग करते हुए बिना थके घर का काम करना चाहिए।

कुछ ऐसी ही धारणा को घर–घर में चलने वाले टीवी धारावाहिक भी बढ़ावा देते हैं। ज्यादातर धारावाहिकों में किसी एक महिला को घर के अन्य पुरुषों की तुलना में निर्णय लेने वाली स्थिति में दिखाया जाता है जबकि वास्तविक जीवन के परिवारों में ऐसा बिल्कुल नहीं होता है। धारावाहिकों में महिलाओं को साजिश रचते हुए, विवाह पूर्व और विवाहोपरांत अवैध संबंध बनाते हुए, महंगे और बहुत भारी सोने और हीरों के गहने पहने हुए दिखाया जाता है, उनकी प्रस्तुति अवास्तविक ढंग से की जाती है। युवा महिलाओं को बड़ी पार्टियों में आधुनिक कपड़े पहनकर जाते हुए, हाथों में महंगा मोबाइल थामे और लक्जरी गाड़ियों में आते–जाते दिखाया जाता है।

अध्ययनों में ये बात सामने आई है कि महिलाओं की पत्रिका में पुरुषों की पत्रिका के मुकाबले वजन घटाने के बारे में विज्ञापन और आलेख दस गुना ज्यादा होते हैं। टेलीविजन और फिल्में भी पतली काया को महिलाओं के अस्तित्व से जोड़ कर दिखाती हैं। एक हालिया रिपोर्ट के मुताबिक, टेलीविजन की एक–तिहाई महिला कलाकारों का वजन कम है और बीस में से केवल एक का वजन औसत से अधिक है। अधिक वजन वाली अभिनेत्रियों को पुरुष कलाकारों द्वारा अपमानित किया जाता है। शोध ये बताते हैं कि साइज को लेकर आवश्यकता से अधिक चिंतित होना, हमेशा पतली, छरहरी और जवान दिखने की चाहत रखने से लड़कियों में अवसाद उत्पन्न होता है, उनमें आत्म–विश्वास की कमी हो जाती है और वे खाने–पीने की

गलत आदतों की शिकार हो जाती हैं। बीस साल पहले, एक मॉडल का वजन महिलाओं के औसत वजन से 8 प्रतिशत कम होता था लेकिन आज यह 23 प्रतिशत तक कम होता है। काया, आहार और सुंदरता को लेकर एक आम महिला को मीडिया के माध्यम से जो संदेश दिया जाता है वो यही होता है कि उनका शरीर परफेक्ट रहने के लिए ही बना है और उन्हें इस पर हमेशा काम करते रहना होगा।

सामाजिक विज्ञान में रुचि रखने और शोध करने वालों के लिए भारतीय मीडिया में महिलाओं की प्रस्तुति, चाहे वो फिल्म हो, टेलीविजन के धारावाहिक, समाचार, विज्ञापन या सामाजिक मीडिया में हो, बेहद चिंता का विषय रही है। कुछ अध्ययनों में ये पाया गया कि महिलाओं से जुड़े सामाजिक मुद्दों को अखबारों में 9 प्रतिशत से भी कम स्थान दिया जाता है जबकि उनसे जुड़ी सनसनीखेज खबरों और लेख, जिनमें अपराध की खबरें भी शामिल हैं, को 52 से 63 प्रतिशत तक जगह दी जाती है। इससे भी ज्यादा परेशान करने वाली बात ये है कि मीडिया में औरतों को पीड़िता के तौर पर दिखाने का चलन बढ़ा है।

न्यूज रिपोर्ट पर किए गए एक अध्ययन के मुताबिक, सेक्स और सनसनी रिपोर्टिंग के मुख्य आकर्षण हो गए हैं। देश के चार प्रमुख अंग्रेजी समाचार पत्रों पर किए गए एक अध्ययन में पता चला कि एक अखबार में महिलाओं से जुड़ी खबरें जहां मात्र 2 प्रतिशत ही रहीं वहीं अन्य तीन अखबारों में तो उतनी

भी नहीं थीं। देखा जाए तो केवल संसद में महिलाओं की संख्या पर होने वाली बहस को छोड़ दिया जाए तो स्थिति अत्यंत खराब है। टेलीविजन पर दिखाए जाने वाले विज्ञापनों, जिनमें सिगरेट और अंतःवस्त्रों के विज्ञापन भी शामिल हैं, की नैतिक आधार पर काफी आलोचना की गई है।

ऑडियो–विजुअल मीडिया में औरतों को सेक्स की वस्तु के तौर पर परोसे जाने की प्रवृत्ति में वृद्धि हुई है। उनका चित्रण अब भी रूढ़िवादी ढंग से ही किया जा रहा है। भारतीय मीडिया में औरतों का चित्रण बहुत ही धार्मिक, अपने परिवार के लिए जीने वाली, राजनीतिक रूप से अनजान, सामाजिक रूप से अपरिहार्य और सांस्कृतिक रूप से अति आधुनिक तौर पर किया जाता है।

हाल के वर्षों में, भारतीय विज्ञापनों में औरतों के चित्रण में उल्लेखनीय बदलाव आया है। समय के साथ समाज में स्त्रियों की भूमिका में हो रहे परिवर्तनों के अनुसार ही विज्ञापनों के स्वरूप में भी बड़ा बदलाव हुआ है। विज्ञापन मीडिया का वो महत्वपूर्ण अंग है जिसका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से समाज में हमारे दृष्टिकोण पर प्रभाव पड़ता है। आज के दौर में औरतें केवल रसोई की चारदीवारी तक ही सीमित नहीं हैं। घर की दहलीज से बाहर निकलकर काम करने की उनकी गतिविधियों ने समाज को अलग तरीके से सोचने के लिए मजबूर किया है। इस सोच का फायदा उठाकर बाजार में बैठे लोगों ने नए तरीके के उत्पाद और विज्ञापन रणनीति को अपनाया है। दास (2000) ने 1987, 1990 और 1994 की भारतीय पत्रिकाओं में महिलाओं और पुरुषों के चित्रण का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि ये ठीक है कि स्त्रियों और पुरुषों के चित्रण में समय के साथ परिवर्तन आया है लेकिन यह अभी भी कमोबेश रूढ़िवादी ही है। इसी तरह 2007 में स्पैनिश पत्रिकाओं में भी स्त्रियों और पुरुषों के चित्रण का अध्ययन किया गया। इसमें भी पाया गया कि पिछले 30 वर्षों में उल्लेखनीय बदलाव हुए हैं लेकिन फिर भी जेंडर को लेकर रूढ़िवादिता बनी रही। साथ ही ये भी पता चला कि स्पैनिश पत्रिकाओं में यौन कामुकता का स्तर कम हुआ है। 2009 में ड्विवेड्येट ने अक्टूबर 2006 से लेकर अप्रैल 2007 तक की चर्चित भारतीय पत्रिकाओं का एक अध्ययन किया जिसमें ये सामने आया कि इन पत्रिकाओं के विज्ञापनों में औरत और मर्द को उनकी परंपरागत भूमिकाओं में ही दिखाया जाता है। मर्दों की पत्रिकाओं में औरत और मर्द दोनों को अधिक परंपरागत भूमिका में दिखाया जाता है जबकि औरतों की पत्रिकाओं में औरतों को अधिक आधुनिक भूमिकाओं में दिखाया जाता है।

भारतीय संस्कृति की व्याख्या करने के लिए हिन्दी सिनेमा इस सदी की सबसे अहम कड़ी है। इसने किसी भी अन्य कला के मुकाबले समाज की सोच और परिदृश्य में हुए परिवर्तन को अधिक सक्षम तरीके से दर्शाया है। महिलाओं को लेकर नजरिये को हिन्दी सिनेमा कई तरह से सामने लाता है। फिल्मों में आधुनिक नारीवाद के साथ पारंपरिक नारीवाद के संपर्क को कई तरीके से दिखाया गया है। इसी तरह धार्मिक तथा पौराणिक कथाओं पर आधारित कई फिल्में बनाई गई हैं जिनमें औरत को मूल्यों और गुणों से भरपूर दिखाया जाता है जो कभी कोई गलत काम कर ही नहीं सकती। स्वतंत्रता के बाद सीता के चरित्र को लगातार कई फिल्मों में दिखाया गया। पिछले कुछ वर्षों में ऐसा लगातार कहा जाता रहा है कि हिन्दी सिनेमा ने महिलाओं को लेकर रूढ़िवादिता को तोड़ने में महती भूमिका निभाई है। यहां हम कुछ ऐसे महिला चरित्रों को देख सकते हैं जिन्होंने लीक से हटकर भूमिकाएं निभाई हैं। 1962 में आई साहब बीवी और गुलाम में मीना कुमारी, 1957 की मदर इंडिया में नरगिस और 1957 में आई गाइड में वहीदा रहमान की भूमिकाओं को भूला नहीं जा सकता है। इसी तरह 1995 में बनी फिल्म दिलवाले दुल्हनियां ले जाएंगे में काजोल और 2008 में फैशन में प्रियंका चोपड़ा की भूमिकाएं भी अलग हटकर रहीं। हालांकि नब्बे के दशक में बनीं फिल्मों से कामकाजी महिला के चरित्र लगभग समाप्त हो गए थे और उन्हें घर की चारदीवारी के भीतर ही रहने वाले चरित्र के तौर पर प्रस्तुत किया गया। बॉलीवुड फिल्मों में दिखाई जाने वाली महिलाओं के चरित्रों में आए बड़े बदलाव के बाद भी इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि आज भी फिल्मों में अभिनेत्रियों को या तो आइटम नंबर गानों या फिर अंतरंग प्रेम दृश्यों के लिए ही रखा जाता है। फिल्म 'परदेश' में तो पुरुषों के दो समूहों के बीच एक कबड्डी मैच कराया जाता है और जीतने वाले दल के नेता को इनाम के तौर पर हिरोइन मिलती है। मानो लड़की कोई ट्रॉफी हो जिसे जीतने वाले को दे दिया जाए। ताज्जुब इस बात का है कि इस तरह के दृश्यों को सेंसर बोर्ड से हरी झंडी आखिर कैसे मिल जाती है। भारत में दिखाए जाने वाले विज्ञापनों में गोरी त्वचा को लेकर खास रुचि दिखाई जाती है। टेलीविजन पर दिखाए जाने वाले सनग्लास के एक विज्ञापन में एक बॉलीवुड स्टार समुद्र किनारे सनग्लास पहनकर टहलता है और अपने सिक्स पैक एब्स को दिखाता है कि तभी आसमान से गोरे रंग की मॉडलों की बरसात होने लगती है और उस स्टार को खुद को बचाने के लिए वहां से भागना पड़ता है।

(www.researchgate.net/publication में प्रकाशित)

विद्या मुंशी

होमी व्यारवल्ला

प्रतिमा पुरी

देवयानी चौबल

भारत की वे महिला पत्रकार जिन्होंने तोड़ी चुप्पी की दीवार

ब्रिटिश शासन के दौरान, भारत ने कई क्षेत्रों में बड़े बदलाव देखे और उनमें से एक थी महिलाओं की शिक्षा। हालांकि शुरुआत में शिक्षा की सुविधा केवल कुलीन वर्ग की महिलाओं तक ही सीमित रही लेकिन जल्दी ही इसे समाज में पुरुषों की शिक्षा के समान ही महत्व दिया जाने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि महिलाओं के लिए अवसरों के दरवाजे खुल गए और उन्होंने नए क्षेत्रों में भी कदम बढ़ाने शुरू कर दिए। उन्हीं में से एक चुनौतीपूर्ण क्षेत्र था पत्रकारिता। यहां हम देश की पहली चार महिला पत्रकारों के बारे में जानेंगे।

विद्या मुंशी

इन्हें देश की पहली महिला पत्रकार के तौर पर जाना जाता है जिन्होंने कई अखबारों और पत्रिकाओं में काम किया था। रूसी करंजिया की ब्लिट्ज भी उनमें से एक थी जिसमें उन्होंने दस वर्षों तक काम किया था। उस समय जब भारत में कम्यूनिष्ट पार्टी अवैध थी, तब विद्या मुंशी ने 1942 में ब्रिटेन में इस पार्टी की सदस्यता ली थी। उन्होंने कुछ ऐसी खबरें ब्रेक की थीं जिन्होंने राष्ट्रीय स्तर पर ध्यान बटोरा था। इनमें दो कनाडाई पायलटों द्वारा सुंदरबन से सोने की तस्करी किए जाने और आसनसोल में चिनकुरी खदान आपदा की खबरें शामिल थीं।

होमी व्यारवल्ला

होमी को देश की पहली महिला फोटो पत्रकार होने का गौरव प्राप्त है और उन्हें लोग आम तौर पर 'डालडा 13' के नाम से जानते थे। उनके कैरियर की शुरुआत 30 के दशक में हुई और कार्यकाल के दौरान उन्होंने महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, मुहम्मद अली जिन्ना और इंदिरा गांधी जैसी शख्सियतों की तस्वीरें लेने का मौका मिला। इनके अलावा उन्होंने दूसरे विश्व युद्ध के दौरान की भी कई तस्वीरें लीं जो उनके उपनाम 'डालडा 13' के नाम से प्रकाशित हुई थीं।

प्रतिमा पुरी

1965 में, दूरदर्शन ने 5 मिनट का न्यूज बुलेटिन शुरू किया और प्रतिमा पुरी देश की पहली महिला समाचार वाचिका बन गईं। उनके कुछ यादगार कामों में अंतरिक्ष में जाने वाले पहले व्यक्ति यूरी गैगरीन का साक्षात्कार भी शामिल था। हालांकि उनके बारे में बहुत कुछ ज्ञात नहीं है लेकिन इतना अवश्य है कि जिस जमाने में अभिनेत्रियों और नर्तकियों को अच्छी नजर से नहीं देखा जाता था उस समय प्रतिमा पुरी का नाम सम्मान से लिया जाता था।

देवयानी चौबल

जिस देश में सिनेमा को धर्म की तरह माना जाता है उस देश की पहली महिला फिल्म पत्रकार होने का सम्मान देवयानी चौबल को हासिल है। देवयानी को 60 और 70 के दशक में प्रसिद्ध फिल्म पत्रिका 'स्टार एंड स्टाइल' में ''फ्रैंकली स्पीकिंग'' कॉलम लिखने के लिए जाना जाता था। वे पहली महिला थीं जिन्होंने अपनी लेखनी में 'हिंगलिश' के शब्दों का प्रयोग किया था।

www.shethepeople.tv में प्रकाशित आलेख का अंश

महिलाओं का अभद्र चित्रण (निषेध) अधिनियम, 1986

क्या कहता है हमारा कानून!

महिलाओं का अभद्र चित्रण (निषेध) अधिनियम, 1986: अधिनियम महिलाओं के अभद्र चित्रण करने पर दंड का प्रावधान करता है, जिसका तात्पर्य है ''किसी महिला की छवि का चित्रण; उसके आकार, शरीर या शरीर के किसी भाग का इस प्रकार चित्रण करना जिससे अभद्रता प्रकट होती हो, या जो अपमानजनक, निंदनीय हो अथवा जिससे लोगों की नैतिकता पर प्रहार होता हो या उसे भ्रष्ट करता हो।'' यह कहता है कि कोई भी व्यक्ति ऐसी किसी भी सामग्री अथवा विज्ञापन का प्रकाशन नहीं करेगा, न प्रकाशन करवाएगा और न ही ऐसे किसी प्रकाशन अथवा प्रदर्शनी में सम्मिलित होगा जो किसी भी रूप में महिलाओं की अभद्र रूप से प्रस्तुति करता है।

अधिनियम में, विज्ञापन के अंतर्गत, कोई भी नोटिस, सर्कुलर, लेबल, कवर या अन्य दस्तावेज तथा वे दृश्य प्रस्तुतिकरण आते हैं जिन्हें रोशनी, ध्वनि, धुआं या गैस के माध्यम से उत्पन्न किया जाता है। राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा सुझाई गई अनुशंसाओं में कहा गया है कि ''विज्ञापन'' के अंतर्गत कोई भी नोटिस, सर्कुलर, लेबल, पोस्टर, कवर या अन्य दस्तावेज आते हैं तथा साथ ही लेजर, ध्वनि, धुआं, गैस, फाइबर, ऑप्टिक इलेक्ट्रॉनिक व अन्य मीडिया द्वारा किया गया दृश्य प्रस्तुतिकरण शामिल हैं।

यह कहता है कि कोई भी व्यक्ति ऐसी किसी भी किताब, परचा, पत्र, स्लाइड, फिल्म, लेखन, चित्र, स्केच, फोटोग्राफ अथवा छवि का प्रस्तुतिकरण न तो स्वयं करेगा न करवाएगा, न बेचेगा, न किराया पर देगा और न ही डाक के जरिये या प्रत्यक्ष तौर पर वितरण करेगा जिसमें महिलाओं की अभद्र प्रस्तुति हो रही हो। अधिनियम के तहत महिलाओं की अभद्र प्रस्तुति को लेकर जो विवरण दिए गए हैं, उनके अंतर्गत निम्नलिखित को रखा जा सकता है:

- किसी स्त्री को सेक्स की वस्तु के तौर पर प्रस्तुत करने की मंशा
- किसी स्त्री को पुरुष के आनंद के लिए सेक्स की वस्तु के तौर पर प्रस्तुत करने की मंशा

- महिलाओं को पुरुषों के अधीन दिखाना और उसे स्त्री के गुण के तौर पर प्रदर्शित करना
- अपमानजनक स्तर तक खुशामद करने को स्त्रीत्व के गुण बताकर उसे महिमामंडित करना
- महिलाओं को अभद्र या अपमानजनक दिखाना
- लोगों की नैतिकता को भ्रष्ट, नष्ट या कलुषित करना

अधिनियम के मौजूद होने के बाद भी हमारे देश के मीडिया में महिलाओं का चित्रण एक बड़ा मुद्दा बना हुआ है। प्रावधानों का उल्लंघन किए जाने पर कानून के तहत जो जुर्माना व सजा दी जानी है उसे लेकर व्यापक पैमाने पर मतभेद है।

वर्तमान कानून

- केवल प्रिंट मीडिया में लागू
- पहली बार के अपराध में दो वर्ष की कैद की सजा
- दोबारा अपराध होने पर सात वर्ष तक कैद की सजा
- पहली बार के अपराध में 2000 रुपए जबकि दोहराए जाने पर एक लाख तक का जुर्माना

प्रस्तावित कानून

- प्रिंट एवं डिजिटल मीडिया दोनों में लागू
- पहली बार के अपराध में तीन वर्ष की कैद की सजा
- दोबारा अपराध होने पर सात वर्ष तक कैद की सजा
- पहली बार के अपराध में एक लाख रुपए जबकि दोहराए जाने पर पांच लाख तक का जुर्माना

दुनिया भर की औरतों ने वर्ष 2018 में यौन प्रताड़ना के मामलों के खिलाफ एक चुप्पी तोड़ो अभियान चलाया जिसे #मी टू अभियान के नाम से जाना गया। मीडिया और फिल्मों में काम करने वाली औरतों के साथ वर्तमान और अतीत में हुए यौन दुर्व्यवहार के मामले सामने आए जिसमें कई मशहूर और नामचीन लोग बेनकाब हुए जिन्हें बढ़ते दबाव के बाद अपने पद से इस्तीफा भी देना पड़ा। यहां जानिए इससे जुड़ी कुछ रोचक बातें:

1. इस अभियान का मुख्य चेहरा है तराना बुरके। मानवाधिकार कार्यकर्ता बुरके ने 2006 में यौन प्रताड़ना की शिकार एक लड़की का साक्षात्कार लिया था और उसके दुख को कम करने के लिए उन्होंने कहा था, ''तुम अकेली नहीं हो। ऐसा मेरे साथ भी हुआ था।'' तब पहली बार शब्द 'मी टू' सामने आया था।
2. हाल ही में ये शब्द तब चर्चा में आया जब 15 अक्टूबर 2017 को हॉलीवुड अभिनेत्री अलीशा मिलानो ने ट्विटर पर लिखा, ''अगर आप यौन प्रताड़ना या दुर्व्यवहार की शिकार हुई हैं तो लिखें 'मी टू'। मिलानो का ट्विट हॉलीवुड अभिनेता हार्वे वेनस्टेन के खिलाफ लगे यौन प्रताड़ना के आरोपों के प्रकाशित होने के 10 दिन बाद सामने आया था। इसके बाद पूरी दुनिया से औरतों ने अपने साथ हुए दुर्व्यवहार के मामलों को सोशल मीडिया पर रखना शुरू कर दिया।
3. प्यू रिसर्च के मुताबिक, 2018 के 30 सितम्बर तक #मी टू को केवल अंग्रेजी भाषा में 19 मिलियन से अधिक महिलाएं प्रयोग कर रही थीं। 9 सितम्बर को इसे प्रयोग करने वालों की संख्या सर्वाधिक रही जब सीबीएस के मुख्य कार्यकारी निदेशक लेस्ली मून्व्स ने प्रताड़ना के आरोप के बाद इस्तीफा दे दिया था।
4. प्यू रिसर्च ने बताया कि इस अभियान में मुख्यतः दो तरह के मामले सामने आए जिनमें या तो फिल्म उद्योग की मशहूर हस्तियों के आरोप रहे या फिर लोगों की व्यक्तिगत कहानियां। करीब 71 प्रतिशत ट्विट् अंग्रेजी भाषा में रहे।
5. गूगल ने मी टू राइजिंग के लिए एक समर्पित वेबसाइट बनाई है जिसमें पूरी दुनिया में इसको लेकर चल रहे ट्रेंड को देखा जा सकता है। इसके नक्शे में भारत को चमकते हुए दिखाया गया है जिसका मतलब है कि यहां यह अभियान तीव्र गति से चल रहा है। गूगल के मुताबिक, पिछले एक साल में मीटू अभियान को दुनिया के सभी 195 देशों में सर्च किया गया।
6. भारत में मीटू अभियान 7 अक्टूबर 2018 को सुर्खियों में आया जब अभिनेत्री तनुश्री दत्ता ने वरिष्ठ अभिनेता नाना पाटेकर के खिलाफ यौन दुर्व्यवहार के गंभीर आरोप लगाए। उन्होंने सार्वजनिक रूप से कहा कि 10 साल पहले एक फिल्म की शूटिंग के दौरान नाना ने उनके साथ छेड़खानी की थी। इसके बाद कई और नामी–गिरामी हस्तियों पर यौन दुर्व्यवहार के आरोप लगे जिनमें केन्द्रीय मंत्री एम.जे. अकबर भी शामिल रहे और उन्हें अपने पद से इस्तीफा देना पड़ा।

सोशल मीडिया भी आएगा दायरे में

अधिनियम को वर्ष 2000 के सूचना तकनीकी एक्ट से संबद्ध करने के लिए, यह 1986 के अधिनियम के खंड 4 का विस्तार करता है जिसमें महिलाओं के अभद्र चित्रण वाले परचों और किताबों के प्रकाशन तथा वितरण को प्रतिबंधित किया गया है। अब इसमें ऐसी हर सामग्री को शामिल किया गया है जिसे प्रकाशित अथवा वितरित किया गया है। अतः अधिनियम की परिधि में अब सोशल मीडिया प्लेटफार्म तथा डिजिटल मीडिया के श्रोत भी आ सकेंगे, जैसे कि व्हाट्सएप, स्काइपे, वाइबर, स्नैपचैट, इंस्टाग्राम इत्यादि। इसके अलावा मंत्रालय ने 'विज्ञापन' की परिभाषा के विस्तार का भी प्रस्ताव रखा है जिसमें 'सभी प्रकार के डिजिटल और इलेक्ट्रॉनिक रूप, जैसे कि एसएमएस, एमएमएस' शामिल हैं।
संशोधन विधेयक को 2012 में यूपीए सरकार के दौरान भी राज्यसभा में प्रस्तुत किया गया था, जिसके बाद इसे संसदीय समिति के पास भेज दिया गया था। महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के प्रस्तावित संशोधन 2103 में पेश की गई संसदीय समिति की रिपोर्ट के आधार पर तैयार किए गए हैं। इसमें ऑनलाइन संचार साधनों को अधिनियम के दायरे में लाने के अलावा सूचना तकनीकी अधिनियम, 2000 के दंड प्रावधानों को भी शामिल करने की सिफारिश की गई है।

टीवी के मायाजाल से बचना होगा

फिल्मों और धारावाहिकों में महिलाओं की अभद्र प्रस्तुति का किशोरों, युवतियों और बच्चों पर हो रहा बुरा प्रभाव, महिलाओं की गलत छवि प्रस्तुत कर रहे विज्ञापन

फिल्में और विज्ञापन समाज का आइना होती हैं। दोनों एक–दूसरे का प्रतिरूप होते हैं। ऐसे में जाहिर है कि समाज का प्रभाव फिल्मों पर और फिल्मों का समाज पर प्रभाव होता है। विशेषकर, फिल्मों, विज्ञापनों और धारावाहिकों में महिलाओं को किस रूप में दिखाया जा रहा है, इस बात का पूरे परिवार और फिर समाज पर गहरा असर पड़ता है। घर की औरतों को अगर मजबूत, आत्मनिर्भर और उत्साही दिखाया जाए तो इससे औरतों और परिवार के अन्य सदस्यों पर बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। विशेषकर बच्चों को पता लगता है कि मां का काम केवल रसोई में खाना बनाना नहीं है बल्कि वे भी नौकरी करके पिता की तरह उनके परिवार को संभाल सकती हैं या वे भी परिवार के लिए फैसले ले सकती हैं। इसके विप. रीत अगर टीवी पर दिखाई जा रही औरतों को कमजोर, निर्भर और निराश दिखाया जाता है तो इसका बुरा प्रभाव परिवार पर पड़ता है।

डॉ बिन्दा सिंह

(क्लीनिकल सायकोलॉजिस्ट)

धारावाहिकों में महिलाएं

पुरुषों की तुलना में औरतें कहीं अधिक संवेदनशील होती हैं और वे हर बात को बहुत ही गहराई और सकारात्मकता से लेती हैं। यही वजह है कि धारावाहिकों में औरतों को जैसा दिखाया जाता है, उन्हें रोज टीवी पर देखने वाली औरतें भी उसी प्रकार से लेती हैं। विडंबना ये है कि धारावाहिकों में औरतों को अजीब सी वेशभूषा में कभी षडयंत्र रचते और घर तोड़ते तो कभी जरूरत से अधिक सहनशील, धार्मिक और आदर्श रूप में दिखाया जाता है। उन्हें सक्षम, आर्थिक फैसले लेने वाली या स्वतंत्र महिला के तौर पर दिखाने वाले धारावाहिकों की संख्या बहुत कम है। आजकल लगभग हर चैनल पर डायन, चुड़ैल और नागिन जैसे महिला चरित्रों को दिखाया जा रहा है जो समाज में औरतों की गलत छवि को प्रचाारित कर रहे हैं। जिस देश में औरतें रक्षा और विदेश मंत्रालय की कमान संभाल रही हों उस देश में औरतों को इस रूप में दिखाना विरोधाभासी है। कई बार इन चरित्रों के कारण औरतों को सोशल मीडिया पर मजाक का पात्र बना दिया जाता है जिससे न केवल उनका मान–मर्दन होता है बल्कि औरतें अवसाद का शिकार भी हो जाती हैं।

फिल्मों में स्त्रियों का चित्रण और प्रभाव

फिल्मों में हिरोइनों को जिस तरह से प्रस्तुत किया जाता है उससे न केवल एक औरत के रूप में स्वयं अभिनेत्रियों के सम्मान को ठेस पहुंचती है बल्कि एक दर्शक के तौर पर उन्हें देख रहीं औरतों के बारे में भी समाज में गलत सोच उपजती है। अत्यधिक भड़काउ कपड़े पहनने और महंगे मोबाइल फोन तथा अन्य चीजों के इस्तेमाल करने का असर किशोरियों पर देखा जा रहा है। खासकर छोटे शहरों से आने वाली लड़कियां इसके चक्रव्यूह में फंस जाती हैं और अकसर गलत रास्तों पर भटक जाती हैं। वे अपने आप को भी स्क्रीन पर दिखने वाली अभिनेत्रियों की तरह देखना चाहती हैं। नतीजतन कुछ पैसों के लिए वे दलालों के चक्कर में पड़ जाती हैं। दूसरी ओर, जिन लड़कियों को ऐसी ड्रेस या मोबाइल नहीं मिल पाता है वे अवसाद से ग्रस्त होने लगती हैं। हॉस्टलों में रहकर पढ़ाई कर रहे युवा लड़के–लड़कियों द्वारा आत्महत्या किए जाने के बढ़ते मामलों को भी इससे जोड़कर देखा जा सकता है। एक तरफ माता–पिता द्वारा दी गई पढ़ाई की जिम्मेदारी और दूसरी ओर बाजार में बढ़ते चकाकौंध के बीच वे खुद के लिए रास्ता तय नहीं कर पाते हैं।

कार्टून सीरियलों में महिलाओं का चित्रण

दुख की बात ये है कि बच्चों के लिए बनने वाले कार्टून सीरियलों में भी महिला चरित्रों को ज्यादातर परंपरागत भूमिका में ही दिखाया जाता है। उन्हें घरेलू काम करते हुए, रसोई में खाना बनाते, बच्चों को संभालते या बाजार से सामान लाते हुए दिखाया जाता है। बच्चों के बीच खासे मशहूर सीरियल 'शिनचन' में मां को पूरे समय बच्चों को संभालते और मार्केट में कपड़ों पर लगी सेल के पीछे भागते हुए दिखाया जाता है। उसे गैर जिम्मेदारी से पति की कमाई को उड़ाते हुए भी दिखाया जाता है जिसका मजाक पति और बच्चे सभी उड़ाते हैं। अपने पसंदीदा कार्टून सीरियलों में मांओं की ऐसी भूमिका को देखकर बच्चे भी औरतों के बारे में गलत धारणा बना लेते हैं।

दृढ़ बनना होगा औरतों को

समाज में अपने प्रति सोच को बदलने के लिए खुद औरतों को ही दृढ़ बनना होगा। उन्हें अपने फैसले मजबूती से लेने होंगे और उनपर कायम रहना होगा। अपने प्रति बन रही छवि के विरुद्ध कठोरता से आवाज उठानी होगी।

कहानी

ग्लानि

संकल्प चिरनिद्रा में सोई अपनी मां के पास बैठा था। निःशब्द! मानो काठ मार गया हो! रोना चाहता था लेकिन उसका पद आड़े आ रहा था। और फिर वो लोगों के सामने खुद को कमजोर साबित नहीं होने देना चाहता था। उसके कानों में मां की आवाज मानो गुज–गुज कर रही थी, ''मेरा स्ट्रांग बेटा किसी के सामने कमजा. र नहीं बनेगा।'' संकल्प अपनी भावनाओं पर काबू नहीं रख सका और मां की सहेली से लिपट दहाड़ मार कर रोने लगा। मां की सहेली ने उसके माथे को प्यार से सहलाया और कहा कि तुम्हारी मां हमेशा कहती थीं, ''बड़ा सयाना और समझदार है मेरा बेटा, लेकिन कभी मेरे गले लगकर मुझसे अपने दिल की बात नहीं करता। मेरी भी हिम्मत नहीं होती कि मैं उससे गले लगकर दिल की बात कर सकूं। कभी कोशिश भी कि तो उसने मेरा हाथ झटककर हटा दिया।'' ''कभी–कभी वो अकेले हो जाती थी तो मुझसे अपने दिल की बात कर लिया करती थी'', यह कहकर मां की सहेली के दबे हुए आंसू भी बाहर निकल गए। सहेली ने संकल्प को इशारा किया कि वो अपने पिता को सम्भाले, लेकिन वह बात को सुनकर अनसुना कर रहा था।

संकल्प की मां के प्रशंसकों का तांता लगा हुआ था। दरअसल संकल्प की मां एक स्टेज कलाकार के साथ–साथ एक अच्छी चित्रकार भी थीं। एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में भी इलाके में उनकी अच्छी पहचान थी। अखबारों की सुर्खियों में वो बनी रहती थीं। दबी जुबान से ही सही, लेकिन सब ओर चर्चा यही थी कि उनकी अपने पति और ससुराल वालों से कभी बनी नहीं। उनके पति और ससुराल वालों की नजर में रंगकर्मी और स्टेज कलाकार महिलाएं कमजोर चरित्र की होती हैं। चार साल के संकल्प को हॉस्टल भेज दिया गया था ताकि उसकी मां उससे मिल नहीं पाए। छुट्टियों में भी उसे अपनी बुआ के घर भेज दिया जाता था। जब बच्चा अपनी मां से मिलने के लिए मचलता तो उसे बता दिया जाता कि उसकी मां ड्रामे के लिए दूसरे शहर गई है, और उसे अपने बेटे की कोई चिन्ता नहीं है। बच्चा अपने मन में मां के लिए नफरत लेकर बड़ा हुआ।

समय के साथ मां प्रसिद्ध और आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो गई। अब उसके पास अपने लिए भी समय नहीं था। कभी–कभी जबर्दस्ती बेटे को बुला भी लेती थी तो उससे गले लगकर मन की बात कहने की हिम्मत नहीं होती थी। संकल्प को अब याद आ रहा था कि मां उसे तरह–तरह की चीजें बनाकर खिलाना चाहती थी लेकिन पिता उनके बनाए खाने को फेंक देते थे। 10वीं के बाद उसे विदेश भेज दिया गया। कभी–कभार मां से बात होती भी थी तो पिता द्वारा बनाई गई नफरत की दीवार सामने आ जाती थी। उसके दिमाग में एक ही बात बिठाई गई थी कि उसकी मां स्वार्थी है। आज वो एक अच्छे पद पर है। जब उसे पता चला कि हार्ट अटैक से उसकी मां की मौत हो गई तो वो अपने को रोक नहीं पाया। मां की सहेली से मिले मां के खत को पढ़कर उसकी सांसें बंध गईं, लिखा था,

''बेटा, तुम खूब खुश रहना। शादी चाहे जिससे भी करना लेकिन उसकी इज्जत करना, उसे पत्नी के साथ एक दोस्त बनाकर रखना और उसे वो सब करने देना जो वो करना चाहती है। अपने परिवार को बांध कर रखना कि कहीं वो बिखर न जाए। हो सके तो मेरे शरीर से लिपटकर रो लेना, मुझे वो सब मिल जाएगी जिसकी मुझे तलाश थी।''

संकल्प खामोश था लेकिन उसकी आंखें कह रही थीं, मां तुम महान थी। काश हर बेटे को तुम्हारे जैसी मां मिल जाती।

लेखिकाः डॉ बिन्दा सिंह

(एक सच्ची कथा पर आधारित)

नारी तुम केवल श्रद्धा हो....

राजा रवि वर्मा की 'दमयंती'

`साहित्य किसी समाज के दृष्टिकोण और मनोवृत्ति को दर्शाने का सबसे सशक्त माध्यम है। मानव जीवन को यह अपने चरित्रों, उनके शब्दों और कर्मों से सामने रखता है जिसका मकसद आनंद देना, निर्देश देना और सूचित करना होता है। यह कहना गलत नहीं होगा कि साहित्य के जरिये सदियों से हमारे समाज में औरतों को प्राप्त स्थान का भी सही भान हो जाता है। प्राचीन से लेकर नवीन साहित्य तक में महिला पात्रों, उनके शब्दों और स्थान में आए परिवर्तन ने हमारे समाज और परिवेश की वास्तविक महिलाओं के जीवन और स्थान में आए बदलाव को दर्शाया है।

नारी! तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास–रजत–नग पगतल में,
पीयूष–स्रोत बहा करो जीवन
के सुंदर समतल में।
देवों की विजय, दानवों की
हारों का होता युद्ध रहा,
संघर्ष सदा उर–अंतर में
जीवित रह नित्य–विरुद्ध रहा।
आँसू से भींगे अंचल पर मन
का सब कुछ रखना होगा –
तुमको अपनी स्मित रेखा से
यह संधिपत्र लिखना होगा।''

–जयशंकर प्रसाद (कामायनी)

सीता, द्रौपदी और गांधारी

पुरातन साहित्य में स्त्री और पुरुष पात्रों के चयन में लोक मान्यता का बड़ा ध्यान रखा जाता था। उन महिला पात्रों को ही चुना गया जिन्हें समाज में आसानी से अपनाया जा सके अथवा जिन्हें समाज के लिए आदर्श साबित किया जा सके। जहां गार्गी और मैत्रेयी जैसी स्त्रियां भी साहित्य का अंग बनीं तो वहीं द्रौपदी और कैकेयी की चरित्र रचना कर उन्हें महाभारत और राम–रावण युद्ध के लिए जिम्मेदार भी ठहरा दिया गया।

महाभारत और रामायण जैसे साहित्यों में महिला पात्रों को उनके लिंग के कारण दमन का शिकार बनते दिखाया गया। महिलाओं को पुरुषों से कम महत्व दिया गया और उन्हें पुरुषों के आनंद की चीज के तौर पर रखा गया। सबसे बड़ी बात ये है कि इन महिला चरित्रों को तत्कालीन पितृसत्तात्मक समाज के मुताबिक बनाया और संपादित किया गया। जहां सीता को उसके त्याग के लिए जाना गया वहीं द्रौपदी को महाभारत कराने के लिए दोषी करार दिया गया। इसी तरह पति के दृष्टिहीन होने के कारण गांधारी को भी अपनी आंखों पर पट्टी लगाने के लिए मजबूर किया गया ताकि पतिव्रता साबित कर उसे महान बताया जा सका। यानी कुल मिलाकर हमारे पुरातन साहित्य में औरतों को पतिव्रता और पति की खुशी व सम्मान के लिए निर्णय लेने वाला बताया गया। हालांकि समय बीतने के साथ–साथ पौराणिक महिला चरित्रों की फिर से समीक्षा की गई और उनके कार्यों, शब्दों और महत्व को नए दृष्टिकोण से देखा गया। अमीष, अश्विन संघी, चित्रा बनर्जी दिवाकरुणी, बलराम दास, प्रतिभा राय जैसे लेखकों ने सीता, कैकेयी और द्रौपदी को सशक्त, बुद्धिमान और उत्तरदायी महिला चरित्र के तौर पर सामने रखा।

केट और ब्रिटोमार्ट

अभी तक के तमाम साहित्यों में आदर्श महिला चरित्र वे ही हैं जो सहनशील हैं और जिनमें परिवार और समाज के लिए त्याग करने की सहज प्रवृत्ति है। हालांकि कुछ

अपवाद मौजूद हैं जिनमें पुरुष प्रवृत्ति वाली महिला चरित्रों को भी स्थान दिया गया और उन्हें पसंद किया गया। शेक्सपीयर की केट ने अपने आस–पास के सभी लोगों को प्रभावित किया था। स्पेन्सर की अभिनेत्री ब्रिटोमार्ट, यद्यपि बहुत खूबसूरत थी, फिर भी उसने नाइट के रूप में लोगों की जान बचाई थी और एक बेहद मजबूत महिला चरित्र थी। शेक्सपीयर की ही लेडी मैकबेथ एक महत्वाकांक्षी महिला थी और उसने अपने पति को राजा की हत्या करने के लिए उकसाया था।

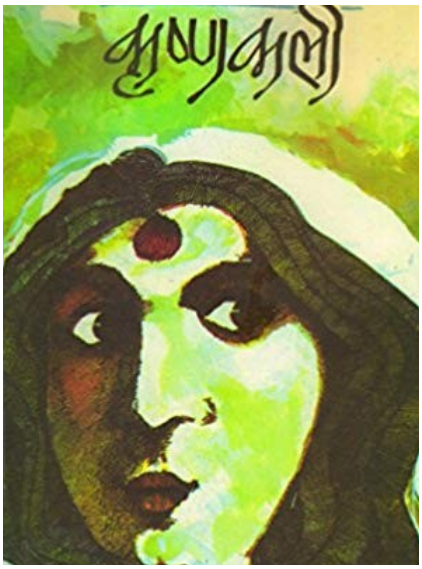

चारूलता और अम्मू

गुरु रबीन्द्रनाथ टैगोर की 'नस्तानृह' जिसे कालांतर में सत्यजीत रे की 'चारूलता' के नाम से अधिक जाना गया, एक ऐसी नायिका थी जो अपने पति की उपेक्षा से बेखबर नहीं थी लेकिन उसी एकाक. ीपन में वो किसी अन्य पुरुष के प्रति आकर्षित हो गई। टैगोर ने किसी कृतघ्न, बुरी प्रवृत्ति की औरत का खाका खींचने के बजाय एक ऐसी औरत को अपने कैनवास पर उतारा जो स्त्री मन की जटिलता को बखूबी दर्शाता था। उनमें कुछ ऐसा जो हमेशा ही पुरुषों से बढ़कर रहा है लेकिन उन्हें कभी जीतने नहीं दिया गया। दूसरी ओर है अम्मू। लेखिका अरूंधति रॉय की बुकर अवार्ड विजेता 'द गॉड ऑफ स्मॉल थिंग्स' की नायिका जिसने अपने सीरियाई परिवार की रूढ़िवादी मान्यताओं को तोड़ा है। अपने विश्वास से परे जाकर विवाह करना, फिर अपने अक्षम पति से तलाक लेना और फिर अपनी जाति से निम्न जाति के पुरुष से दोबारा शादी करने वाली जुड़वा बच्चों की मां अम्मू में अरूंधति ने कम पढ़ी–लिखी औरत के अदम्य धैर्य और विश्वास को दर्शाया है।

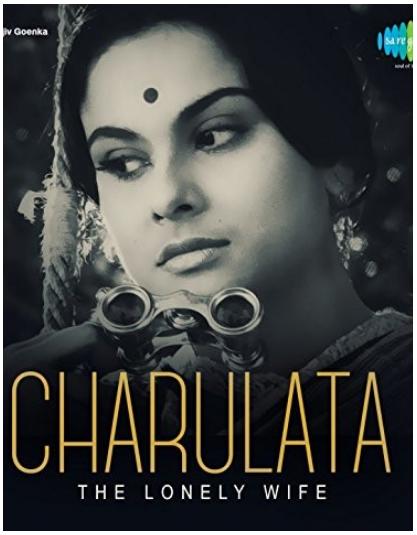

कृष्णकली और धनिया

शिवानी और प्रेमचंद, दो ऐसे कहानीकार हैं जिनकी नायिकाएं अलबेली हैं। वे कोमल मगर मजबूत हैं, वे खूबसूरत मगर सहनशील हैं। उनमें दुनिया से लड़ने का जज्बा है। कृष्णकली अपनी जड़ों को तलाशती है लेकिन अपने वर्तमान को भी जानती है। दूसरी ओर 'गोदान' की धनिया है जो मुख्य चरित्र होरी की दुखों में घिरी पत्नी है। वो परेशान है लेकिन हार मानने को तैयार नहीं है। अपना उपहास खुद बनने देने को तैयार औरतों के लिए न्याय की लड़ाई वो लड़ती है और इसके लिए अपने पति की मर्जी के विरुद्ध भी वो जाती है।

रोजी और जया

उपन्यासकार आर.के. नारायणन की कहानियों में कई महिला पात्र होते हैं जो पाठकों पर अपनी अमिट छाप छोड़ती हैं, लेकिन ज्यादातर में उनकी भूमिका नायक के बाद की ही होती है। उनके महिला चरित्रों में आम तौर पर स्त्रियोचित गुण और दोष मिल जाते हैं जो आखिरकार पुरुष सत्ता के सामने नतमस्तक हो जाती हैं। 1958 में आई 'गाइड' की रोजी एक महत्वाकांक्षी स्त्री है जो नृत्यांगना बनना चाहती है लेकिन हर समय उसकी उपेक्षा करने वाला उसका पति ऐसा नहीं चाहता है। रोजी एक टूरिस्ट गाइड की मदद से मशहूर नर्तकी बन जाती है और समाज और पति की परवाह न करते हुए गाइड के साथ ही रहने लगती है। कथाकार शशि देशपांडे की नायिकाएं मध्यम वर्ग से आती हैं। 'दैट लांग साइलेंस' की जया एक उच्च वर्ग की सुविधाभोगी महिला है जिसके दो किशोरवय बच्चे हैं। जालसाजी के एक मामले में उसके पति के फंसने के बाद उसे एक छोटे से फ्लैट में रहने के लिए विवश होना पड़ता है जहां उसका अपने अंतर्मन के साथ द्वंद्व शुरू होता है। वहां वो अपनी पहचान ढूंढती है और एक भावनात्मक सफर से गुजरती है।

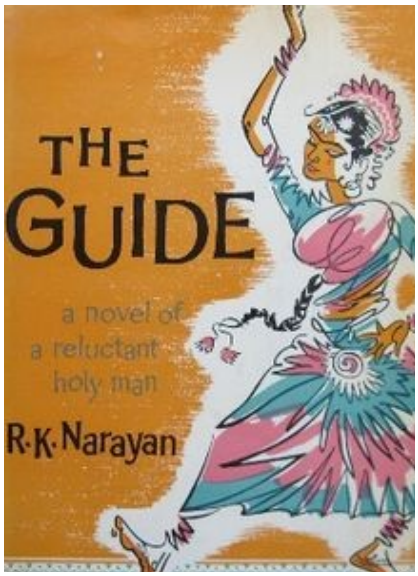

साहित्य में स्त्री पात्रों का सफर अंतहीन है। कहीं अबला तो कहीं सशक्त। कहीं समर्पित तो कहीं स्वयं को सिद्ध करने की छटपटाहट। अंतर्द्वंद्व से गुजरती औरत का चित्रण समय और काल के साथ परिवर्तित होता रहा है लेकिन अब भी इसमें परिवर्तन की अनंत गुंजाइश बाकी है।

लीक से हटकर

न झुकीं न रुकीं, दिखाई नई राह

करीना कपूर खान

करीना कपूर खान ने फिल्म इंडस्ट्री में एक नया ट्रेंड स्थापित किया। गर्भावस्था के दौरान अपने बेबी बंप के साथ पूरी गरिमा से वे दुनिया के सामने आईं और इस अवस्था को लेकर अब तक व्याप्त भ्रांतियों को नकार दिया। करीना कभी पत्रकारों से भागी नहीं और उन्होंने सहजता से उन्हें पोज दिया। वे मीडिया और इंटरनेट की सुर्खियों में आई जब बेबी बंप के साथ उन्होंने 2016 के लैक्मे फैशन वीक में रैंपवॉक किया।

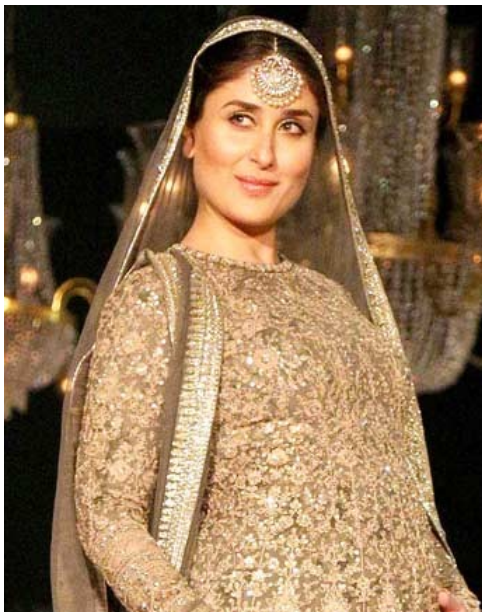

दीपिका पादुकोण

बॉलीवुड की बेहतरीन अदाकारा दीपिका पादुकोण ने मानसिक स्वास्थ्य को लेकर लोगों में फैली भ्रांतियों को तोड़ा है। उन्होंने सार्वजनिक रूप से ये स्वीकार किया कि अतीत में वे अवसाद की शिकार रही हैं। अवसाद, जिसके बारे में लोगों को बात करने में भी शर्म और संकोच महसूस होता है और लोग इससे ग्रस्त होने के बाद भी इसे स्वीकार नहीं करते हैं, दीपिका ने न केवल इसे माना बल्कि मानसिक स्वास्थ्य से ग्रस्त लोगों में जागरूकता फैलाने के लिए एक एनजीओ 'लिव लव लाफ फाउंडेशन' भी स्थापित किया।

कंगना रनौत

कंगना रनौत जितना अपनी अदाकारी के लिए जानी जाती हैं उतनी ही अपनी बेबाक बयानी के लिए पहचानी जाती हैं। एक साक्षात्कार में उन्होंने खुलकर कहा कि लोग चाहते हैं कि वे सती सावित्री बनी रहें लेकिन आज की औरत होने के नाते वे आजाद हैं और समाज के कठमुल्लों के सामने झुकने वाली नहीं हैं। कंगना ने कहा कि लोग दबकर रहने वाली और दया की पात्र महिलाओं को पसंद करते हैं लेकिन अब औरतों को युवा, आक्रामक और फुर्तीला होने की जरूरत है। राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार से नवाजी जा चुकीं कंगना एक गैर फिल्मी पृष्ठभूमि से हैं और फिल्म उद्योग में सुविधाप्राप्त बड़े घरानों की दादागिरी के खिलाफ भी वे कई बार सार्वजनिक तौर पर बोल चुकी हैं।

नंदिता दास

नंदिता दास ने भारत में त्वचा के रंग को लेकर होने वाले पक्षपात के खिलाफ मोर्चा खोला है। वे इससे जुड़े अभियान "डार्क इज ब्यूटीफुल" का समर्थन करती हैं और गोरे और काले रंग के बीच भेद को खत्म करने की खुलकर वकालत करती हैं। लड़कियों के साथ रंग को लेकर होने वाले भेदभाव के इस संवेदनशील मुद्दे पर बहस के अलावा नंदिता फिल्मों में एकदम अलग तरीके की भूमिकाओं को लेकर भी चर्चा में रहती हैं। नंदिता ने अभिनेत्री शबाना आजमी के साथ अति विवादित फिल्म 'फायर' की थी जिसमें उन्होंने समलैंगिक किरदार को निभाया था। वे लीक से हटकर फिल्मों के लिए जानी जाती हैं।

सारिका

सारिका एक अच्छी अभिनेत्री तो हैं ही लेकिन उसके अलावा कमल हासन के साथ अपने रिश्तों को लेकर भी वे हमेशा चर्चा में रही हैं। सारिका ने कमल हासन के साथ विवाह करने से पहले ही अपनी बेटी श्रुति को जन्म दिया था लेकिन इसके बाद भी विवाह के लिए तब तक रुकीं जब तक कि उन्होंने अपनी दूसरी बेटी को जन्म नहीं दे दिया ताकि दोनों बेटियों में कोई भेदभाव नहीं कर सके।

श्रोतः www.midday.com

नवोदित

क्या कहते हैं आज के कलाकार

चंद्रा नंद स्वरूपिणी

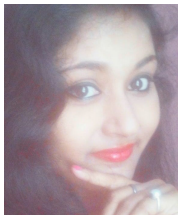

बिहार की माटी से जुड़े नामचीन कलाकार तो कई हैं लेकिन आज के जमाने में अपने गानों से माटी की खुशबू बिखेरने का सपना देखने वाले कलाकारों का होना थोड़ा चकित करता है। बिहार की राजधानी पटना में रहने वाली भोजपुरी की उभरती गायिका चंद्रा नंद स्वरूपिणी कुछ ऐसी ही सोच के साथ संघर्ष कर रही हैं।

अपनी नानी पद्मश्री विंध्यवासिनी देवी की गायन परंपरा को आगे बढ़ाने के लिए मेहनत कर रहीं चंद्रा बताती हैं कि क्षेत्रीय संगीत में साफ–सुथरे गानों के साथ आगे बढ़ना किसी चुनौती से कम नहीं है। खासकर भोजपुरी गायन के क्षेत्र में तो ये और भी मुश्किल हो जाता है। बाजार अश्लील और द्विअर्थी गानों से भरा है। लोग भी ऐसे ही गाने पसंद करते हैं जिनमें संवेदनशीलता कम और अश्लीलता अधिक हो। ऐसे में खुद को पारंपरिक साफ–सुथरे गानों के साथ स्थापित करना अत्यंत कठिन है। फिर भी चंद्रा ने कभी समझौता नहीं किया और द्विअर्थी गाने नहीं गाने की अपनी जिद पर अड़ी रहीं। वे बताती हैं कि ऐसे कई मौके आए जब उन पर अश्लील गाने गाने का दबाव डाला गया लेकिन वे झुकी नहीं। भोजपुरी फिल्मों के एक नामी अभिनेता और गायक का नाम लेते हुए चंद्रा ने बताया कि उन्होंने मुझ पर अपने साथ काम करने और अश्लील गाने गाने का दबाव बनाया, यहां तक कि बात नहीं मानने पर नतीजा भुगतने की धमकी भी दी, लेकिन मैं डरी नहीं।

फिल्मों, गानों और विज्ञापनों में महिलाओं के अभद्र चित्रण किए जाने से चंद्रा बहुत आहत हैं। वे चाहती हैं कि अपने गानों से वे एक ऐसा माहौल बनाएं जिससे किसी भी महिला के साथ अभद्रता न हो सके। अब तक के अपने सफर के बारे में चंद्रा बताती हैं कि कई बार उन्हें आगे बढ़ने से रोकने की कोशिश की गई। अपने पहले एलबम 'सांचा तेरा नाम' के गाने न केवल उन्होंने गाए थे बल्कि उन्हें लिखा भी खुद उन्होंने ही था, लेकिन म्यूजिक कंपनी गीतकार के नाम का क्रेडिट उन्हें नहीं देकर खुद लेना चाहती थी। चंद्रा ने इसका कड़ा विरोध किया और फिर दूसरी कंपनी से अपना एलबम जारी करवाया।

चंद्रा मानती हैं कि सभी लोग अभद्र गाने नहीं सुनना चाहते हैं लेकिन म्यूजिक कंपनियां और कम समय में जल्दी प्रसिद्धि पाने की चाहत रखने वाले कलाकार अश्लील गाने परोसकर बाजार पर हावी हो जाते हैं। वे कहती हैं कि उनके सभी गाने अर्थपूर्ण और पारिवारिक हैं और उनके अपने श्रोता हैं। संगीत के प्रति उनके समर्पण और लगन को देखकर ही उनके परिवार ने भी उनका साथ दिया और आज तक देते आ रहे हैं।

अभिशेष झा

''कम समय में जल्दी नाम कमाने की होड़ में आजकल के गायक–संगीतकार फूहड़ गानों को तवज्जो देने लगते हैं जिनमें औरतों का अश्लील चित्रण किया जाता है।'' ये मानना है उभरते हुए गायक अभिशेष झा का जो फूहड़ और द्विअर्थी गानों तथा उनमें औरतों के गलत चित्रण के एकदम खिलाफ हैं।

मिथिलांचल के गांव से निकलकर लखनऊ तक अपनी आवाज की खुशबू फैलाने वाले अभिशेष के अब तक सात एलबम आ चुके हैं जिनमें 'सांझ', 'समर्पण' और 'अक्षत' के गाने पसंद किए जा रहे हैं और सभी गाने शालीन तथा साफ–सुथरे हैं। अभिशेष कहते हैं कि साफ–सुथरे गाने गाना अगर आसान नहीं है तो बहुत मुश्किल भी नहीं है। अगर गायक ठान ले कि वो अश्लील गाने नहीं गाएगा तो कोई भी उसे मजबूर नहीं कर सकता है। आजकल सोशल मीडिया और यूट्यूब जैसे मंच नए गायकों के लिए बहुत सहायक सिद्ध हो रहे हैं, खासकर उनके लिए जो भीड़ से हटकर नाम कमाना चाहते हैं। अभिशेष कहते हैं कि वे केवल नाम और पैसा कमाने के लिए गाने नहीं गाते हैं बल्कि अपने मन की शांति और लोगों को खुशी देना ही उनका मकसद है। हालांकि इसकी कीमत भी उन्हें चुकानी पड़ रही है और उस तेजी में प्रसिद्धि नहीं मिल रही है जितनी तेजी में उन गायकों को मिलती है जो कुछ भी गाने को तैयार रहते हैं।

मीडिया में महिलाओं के अभद्र चित्रण को लेकर अभिशेष बहुत संवेदनशील हैं। वे मानते हैं कि यदि आज वे एक गायक हैं तो इसके पीछे भी एक महिला का ही हाथ है। उनकी मां जब उन्हें लोरी गाकर सुनाती थीं तो उन्हें बहुत अच्छा लगता था और बाद में मां से ही उन्होंने गाने सीखे और गांव में होने वाले छोटे–छोटे कार्यक्रमों में गाना गाने लगे। वहीं से उनके मन में गायक बनने का सपना पलना शुरू हो गया। बड़े होने पर परिवार ने भी उनका साथ दिया और अपने सपनों को पंख देने के लिए वे लखनऊ आ गए। वे मानते हैं कि प्रेम या रोमांस केवल फूहड़ता में ही नहीं होता बल्कि वो एक कोमल अहसास है जिसे अच्छे शब्दों में भी जाहिर किया जा सकता है। यदि सभी गायक–गीतकार इस बात का ध्यान रखें तो गीतों में औरतों के लिए बुरे शब्दों का प्रयोग नहीं होगा और उन पर कभी फब्तियां नहीं कसी जाएंगी।

अभिशेष की कोशिश यही है कि अपने गजलों, गीतों, भजनों और लोकगीतों के माध्यम से वे समाज में समानता और औरतों के लिए सम्मान का भाव उत्पन्न कर सकें। इस काम में उन्हें परिवार और दोस्तों का भी पूरा साथ मिल रहा है। अपने अच्छे मकसद के साथ वे धीरे–धीरे ही सही मगर आगे बढ़ रहे हैं।

मंजरी

स्त्री के मन की

Sulabh International Social Service Organisation

THE OFFSETTERS (INDIA) PRIVATE LIMITED
design, pre-press and color offset printing

bansal TUTORIALS

takshila connect to the universe

COMFED PRIDE OF BIHAR Sudha

We Care IS INTERNATIONAL SCHOOL

बिहार राज्य पुल निर्माण निगम लिमिटेड

GYAN GANGA
ज्ञानम् भार: क्रियां विना

Limagrain

आप हमें ई–मेल करें

आप हमें अपने लेख और पत्र ई–मेल भी कर सकते हैं। इस विषय में विशेष जानकारी equityasia@gmail.com पर ली जा सकती है। प्रकाशक की अनुमति के बिना पत्रिका में प्रकाशित किसी भी सामग्री का अन्यत्र इस्तेमाल करना कॉपीराइट का उल्लंघन माना जाएगा।

© : इक्विटी फाउंडेशन